परमेश्वर की अमृत वाणी—

जो जागत है सो पावत है,
जो सोवत है सो खोवत है।

यो जागार तमृचः कामयन्ते,
यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते
अग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः।

[ऋ० ५-४४-१४, १५ साम० १७१६, १८२७]

आत्म जागरूक को ही, वेद ऋचाएं कामती हैं;
आत्म जागरूक को ही, प्रार्थनाएं थामती है;
आत्म जागरूक को ही, मित्रताएं सुवाहती है;
आत्म जागरूक को ही, सत्यताएं पुकारती है;
आत्म जागरूक को ही, शुभ्रताएं संवारती है;
आत्म जागरूक को ही, प्रेरणाएं सुधारती है;
ज्योतियां परमेश्वर की, पार उसे उतारती है;

—'वसन्त

ओ३म्

वर्ष ७१

अङ्क ६-७

लखनऊ रविवार माघ २७ शक १८९०, फाल्गुन कृ० ३० वि० सं० २०२५, दि० १६ फरवरी १९६९

— जागृति वन्दन —

भोर भई, अब जाग अमृत वेला है।
पशु पक्षी सब जाग गए हैं,
निद्रा आलस्य त्याग, अमृत वेला है।
भोर भई… … …

अब तो आंखें खोल तू मानव
प्रभु से कर अनुराग, अमृत वेला है।
भोर भई… … …

अमृत वेले अमृत मिलता,
बुझती तृष्णा आग, अमृत वेला है।
भोर भई … … …

सोम सुधा का पान तू करले,
खुल जाएंगे भाग, अमृत वेला है।
भोर भई … … …

आनन्दमय है प्रीतम तेरा,
उसके संग तू लाग, अमृत वेला है।
भोर भई … … …

—सुश्री कमलेश बजाज

सम्पादकीय

यज्ञस्य शिवे सं तिष्ठस्व

आर्य जाति में शिवरात्रि पर्व अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। यह देश-विदेश में बसने वाले और आज के युग में अपने आप को हिन्दू कहलाने वाले वर्ग विशेष द्वारा यह पर्व बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है. जो आज पाश्चात्य जगत् की भौतिक चकाचौंध से प्रभावित हैं और जिनका रहन-सहन व खान-पान पूर्णतयः विदेशी हो गया है. उनके लिये केवल खान-पान और मनोविनोद के अतिरिक्त इस पर्व पर और कुछ करना नहीं होता, किन्तु जो धार्मिक वृत्ति के हैं, वे परम्परा का निर्वाह करते हुये आज भी लकीर पीटते हैं. अन्धविश्वास को ही धर्म का प्रतीक मानकर वे दिन भर उपवास करते हैं, और रात्रि भर जागने का स्वाङ्ग भरते हैं, और इस भाँति शिव-पूजन कर, शिवरात्रि का पर्व मना कर मनःतुष्टि करते हैं. जो वाममार्गी हैं, वे उस शिव के नाम पर इस शिवरात्रि के पर्व पर माँस का भक्षण करते हैं. मदिरा का पान करते हैं, और व्यभिचार द्वारा वासना की तृप्ति करते हैं.

शिव के नाम पर जो अनेक शिव के मन्दिर हैं, उनमें पूजा के नाम पर जो जल, दूध, पत्ती आदि चढ़ाई जाती है, और जिस कुत्सित मनोवृत्ति के आधार पर धर्म के नाम पर, इन शिवलिङ्गों की स्थापना की गई है, उनकी चर्चा शालीनता के कारण हम यहाँ नहीं करते, किन्तु कुछ ऐसे भी शिव मन्दिर हैं जहाँ शिव की भव्य प्रतिमायें स्थापित हैं और

जहाँ पर विष्णु भगवान् के अवतारों राम व कृष्ण की भाँति शिव का भी पूजन होता है . शिव की आरती होती है, और प्रसाद चढ़ाया व बाँटा जाता है . जो कुछ भी किया जाता है वह लकीर का फकीर होने के कारण . न कोई शिव को समझता है और न शिवरात्रि के महत्त्व को .

आर्य समाजों में भी शिवरात्रि के महत्व को हमारे बन्धु ऋषिबोध पर्व के नाम से मनाते हैं . बाल मूल शंकर को इस रात्रि को बोध हुआ कि मूर्त्ति में भगवान् नहीं है . बड़ी-बड़ी बातें की जाती हैं. चूहे वाली घटना का सविस्तार वर्णन किया जाता है . शिवरात्रि पर घटित बालक मूल शंकर के जीवन की घटना को व्यक्त करते हुये हमारे आर्य बन्धु बड़े रसान्वित होते हैं, जब जिज्ञासा व्यक्त करते हुए हम अपने बन्धुओं से वेद के प्रमाण पर शच्चे शिव के विषय में प्रश्न पूछते हैं, और शिवरात्रि के रहस्य की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं तो वहां भी एक निराशा दृष्टिगत होती है क्योंकि व्यक्ति विशेष की पूजा के संस्कार जो आर्य जाति में कूट-कूट कर भर गये हैं, उनके कारण व्यक्ति विशेष का गुण गान ही अधिक रह गया है, उसके जीवन निर्माण के रहस्य को जान कर और उसके आधार पर अपने जीवन के निर्माण की अभि-लाषा समाप्त-सी हो गई है .

वास्तविकता क्या थी, और वह आज किस प्रकार स्थिर रखी जाये, जब तक इन पर विचार न किया जाये हमें इस पर्व पर कोई जीवन उपलब्धि नहीं हो सकती . बाल मूलशङ्कर को शिव-

रात्रि पर बोध नहीं वरन् एक जिज्ञासा हुई थी कि सच्चा शिव कौन है, जो सर्वशक्तिमान् होने के कारण सृष्टियों की प्रलय करता है . चाचा और भगिनी की मृत्यु ने बालक की जिज्ञासाओं में वृद्धि की, यह जन्म और मरण क्या है ? जिज्ञासु बालक गृह त्याग कर बनों और पर्वतों पर भटकता रहा। संन्यासी बनकर दयानन्द नाम रखवाकर भी उसे महन्तों और मठाधारियों के मध्य में शिव की प्राप्ति नहीं हुई और शिवरात्रि की पूजा का रहस्य अज्ञात रहा . जिज्ञासाएं तब मिटीं, समाधान तब हुआ जब संन्यासी दयानन्द वेदज्ञ विरजानन्द की शरण में पहुंचा और उसने सच्चे जिज्ञासु की भांति वेदज्ञ गुरु का शिष्यत्त्व धारण किया . वेद सुधा का पान करके ही संन्यासी दयानन्द की आत्मतृषा शान्त हुई। उसे सच्चा शिव मिला,उसकी रात्रियां शिव मिला, उसकी रात्रियां हुईं और वह स्वयं जगत् के लिये शिव बना .

आइए हम भी इस शिवरात्रि पर्व पर वेदानुसार सच्चे शिव का दर्शन करें और अपने जीवन की रात्रियों को शिवरात्रियों में परिणत करें . जगत् का कल्याण करने वाला वह शिव कौन है जिसके लिये वेद ने कहा है—

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः
निवर्त्त याम्मा युषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रामस्य पोषाय सुप्रजस्त्वाय सुवीर्याय ॥ (य० ३-६३)

वेद का यह मन्त्र बतला रहा है कि हे प्रभो ! तेरा ही नाम शिव है . तेरी निज धारण शक्ति ही पितृवत मेरा रक्षण

करती है . मैं तेरे प्रति ही नतमस्तक होता हूं . हे मेरे मंगल-कारी मुझे रक्षित कर, हिंसित होने से बचा अर्थात् काम, क्रोध, मद, लोभ मोह मत्सर आदि महा शत्रुओं से क्षत-विक्षत न होने दे . आयु अन्न, प्रजनन, आत्मैश्वर्य की पुष्टि तथा सुप्रजा के लिये सुवीर्य्य के निमित्त निरन्तर प्रयत्नशील रहने के लिये मङ्गलमय कर , सच्चा शिव अर्थात् परमपिता पर-मात्मा कहाँ है, तो वेद मन्त्र कहता है—

"अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥"

[ऋ० ५-२४-१-२, य० ३-२५, १५-४८, २५-४७, सा० ४४८, ११०७-८]

ऋक्, यजु तथा सामवेद में आया हुआ यह मन्त्र स्पष्ट शब्दों में बतला रहा है कि हे परमात्मा तू ही हमारा निकट तम है । समीपतम होने से ही तू हमारा त्राता है, शिव अर्थात् मंगलकारी है, रक्षक है, ऐश्वर्यदाता और गति प्रदाता है . हमारी सुगति कर और हमें दीप्ततम आत्मैश्वर्य दे .

वेदानुसार यह ज्ञान होने पर कि सच्चा शिव वह परम पिता परमात्मा ही है, और वह सर्व-व्यापक सर्वाधार सर्वान्त-र्यामी हमारे समीपतम है जो कवच बनकर सफल दुरिताओं से हमारा रक्षण करता है, और आत्मैश्वर्यों को प्रदान कर हमारा पोषण करता है, उसे सच्चे शिव की प्राप्ति कैसे हो . उस निकटतम का दर्शन और मिलन कैसे हो ? उस मङ्गल-

मय देव का सङ्गतिकरण कैसे हो, ऐसी उत्कट इच्छा जिनकी हो, वे एक काम करें, अर्थात् अपनी रात्रियों को शिवरात्रियाँ बना दें . स्पष्ट शब्दों में हम इसे यों कहेंगे कि भोग रात्रियों को योग रात्रियों में परिवर्त्तित कर दें . कैसे यह सम्भव होगा, तो प्रश्नोत्तार की सरस शैली में वेद हमें बतलाता है—

"का स्विदासीत् पिशंगिला"
"रात्रिः आसीत पिशंगिला"

अर्थात् अङ्गों को कौन सिकोड़ता है . तो उत्तार मिला "रात्रि" मानव दिन में बर्हिमुखी होकर वाह्य जगत् से सम्बन्धित होता है और रात्रि को शयन में अन्तर्मुखी होता है . यदि मानव अपनी भोग निद्रा को योग निद्रा बना दे तो क्या उसकी रात्रि शिवरात्रि न हो जायगी ? अन्तर्मुखी होकर ही हम उस सर्वज्ञ शिव के समीपस्थ हो सकते हैं, और अन्तर्मुखी होने के लिये रात्रि से बढ़ कर कहीं हमें सुगमता प्राप्त नहीं होती . दिन को मनुष्य को वाह्य मुखी होकर जगत् के भौतिक कार्यों में रत होना पड़ता है . स्वार्थ की परिधि में घिरा रहने के कारण वह जीवन के प्रत्येक व्यवहार को स्वार्थ की तुला पर तोलता है, और फल स्वरूप मन के पापों को संजोता हुआ अनेक दुष्कर्मों में प्रवृत होता है . रात्रि में ही उसे विश्राम मिलता है, जब वह सांसारिक उलझनों से निवृत्ति पाने के निमित्त शयन करता है, और निद्रावस्था में अन्तर्मुखी होता है . निद्रा से पूर्व यदि वह अपना आत्म निरीक्षण करे, परमात्मा का ध्यान करे, सच्चे शिव से अपनी दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करे और

मन को पाप से शून्य करने के निमित्त "मे मनः शिव संकल्प मस्तु" के मन्त्रों का अर्थ समझाते हुये पाठ करे और ऐसी ही शुद्ध मनोभावनाओं को लिये हुये शयन करे, तो उसकी यह भोग रात्रि योग रात्रि में बदल कर शिवरात्रि हो जायगी. जिस प्रकार के विचारों को लेकर वह अन्तर्मुखी होगा वैसे संस्कार उसके चित्त पर पड़ेंगे, और रात्रि पर्यन्त शयनावस्था में उसे आत्म जागृत करते रहेंगे जिसके फलस्वरूप वह अगले दिवस नई चेतना और नव-स्फूर्त्ति को लेकर उत्तिष्ठ होगा। सामवेद की अनेक ऋचाओं में जगदम्बा ने हमें ऐसी ही लोरियाँ दी हैं, और उनमें जो मनोविज्ञान अर्न्तानिहित हैं, उसकी चर्चा हम आर्यमित्र के अध्यात्म-सुधा शीर्षक के अन्तर्गत अपने साधारण अङ्कों में करेंगे.

मानव जीवन का एक विशिष्ट लक्ष्य है और वह है शिव बनना। वेद माता ने अपने अमृत पुत्र और पुत्रियों को पावन प्रेरणा देते हुये कहा है—

'शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः।
मा द्यावा पृथिवी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं
मा वनस्पतीन् ॥" (य० ११-४५)

अर्थात् हे सुन्दर मानव ! तू मानुषी प्रजाओं के लिये शिव हो। इस द्यौ, पृथिवी अन्तरिक्ष और जीवो को सन्तप्त न कर। वेदाज्ञा के प्रतिकूल अशिव बनकर मानव धरती पर जो कुछ कर रहा है, वह न्यायकारी न्याय नियम से वैसा ही फल प्रदान कर रहा है। हमारे पूर्वज जो वेदज्ञ थे, मानव जीवन

की इन नैसर्गिक दुर्बलताओं को जानते थे इसलिये वसन्त ऋतु के उपरान्त प्रतीक स्वरूप शिवरात्रि पर्व की स्थापना की गई दिन और रात्रि का उपवास आत्म शुद्धि के निमित्त था, रात्रि का जागरण अन्तर्मुखी होकर ब्रह्म चिन्तन के लिये था और प्रत्येक रात्रि को मङ्गलमय रात्रि बनाने के लिये पर्व रूप में यह एक वार्षिक घ्यानाकर्षण था जिसे कालान्तर रूढ़िवादिता में प्रतिष्ठित और प्रतिमा पूजा में कुंठित कर दिया गया। वाम मार्गियों ने इसके सर्वथा विपरीत आचरण से इसे सर्वथा कलंकित कर दिया।

सत्य विद्याओं का पुस्तक वेद ही मनुष्य का ठीक मार्ग दर्शन करता है। वेदानुसार मानव जीवन एक सुपावन यज्ञ है जिसमें सुविचारों की समिधा और सुस्नेहरूप घृत और सुमानवीय भावनाओं रूपी सामग्री की अहुतियाँ देनी होती हैं। जीवन यज्ञ की सुगन्धि ही व्यापन शील होकर जन साधारण का जीवन शोधती है। महर्षि दयानन्द ने वेद के आधार पर ही बोधत्व को प्राप्त होकर जीवन यज्ञ की सुगन्धि से अनेक जीवनों को शोधा था जिसके फलस्वरूप आर्यसमाज के प्रारंभिक काल में एक युग प्रवाह के दर्शन हुये थे। यदि हम इस धरा पर उस प्रवाह को जो शिथिल पड़ गया है, पुनः वेगयुक्त करना चाहते हैं तो शिव और शिवरात्रि के मर्म को आत्मसात् करके कर्मकाण्ड अर्थात् यजुर्वेद के दूसरे अध्याय के १९वें मंत्र की इस सूक्ति को दृढ़ता से पकड़ना होगा—'यज्ञस्य शिवे संतिष्ठस्व' अर्थात् (यज्ञस्य) श्रेष्ठतम कर्म के [शिवे] मङ्गलमय अनुष्ठान में [संतिष्ठस्व] सम् स्थित हो जा।

ऋषि-बोध सप्ताह पर धाराप्रवाह वेद कथा—

ऋग्वेद का आत्म जागृति सूक्त

—श्री विक्रमादित्य 'वसन्त' सभा मुख्य उपमन्त्री

[ऋषि बोध पर्व पर आर्यसमाजों द्वारा 'दयानन्द सप्ताह भनाया जाता है। इस सप्ताह में महर्षि दयानन्द के जीवन की घटनाओं की चर्चा की जाती है। एक प्रमुख घटना का उल्लेख इस प्रकार किया जाता है कि जब संन्यासी दयानन्द गुरु विरजानन्द की कुटिया पर पहुंचे और आवाज लगाई तो भीतर से स्वामी विरजानन्द ने पूछा—'कौन' तो संन्यासी दयानन्द ने उत्तर दिया—"यही जानने आया हूं।" योग्य शिष्य को पाकर गुरु विरजानन्द ने आदेश दियां कि अब तक जो कुछ पढ़ा है, उसे भूल जाओ और समस्त ग्रंथों को नदी के जल में प्रवाहित कर दो। संन्यासी दयानंद का वेद पठन यहीं से प्रारंभ हुआ औ वेद से ही संन्यासी दयानन्द को आत्म बोध, प्रकृति बोध और परम बोध हुआ और वह जगत् में वेदों वाला महर्षि कहलाया।

आत्म-ज्ञान एक महाज्ञान है और उसमें दिव्य शक्ति अन्तर्निहित है। ऋषि बोध पर्व प्रत्येक वर्ष आये और चले गये। हमने ऋषि गुणगान कर लिया और समझ लिया कि हमारे कर्त्तव्य की इतिश्री हो गई। हमने कभी भी जिज्ञासु बनकर इस बात को वेद के आधार पर समझने का

प्रयत्न नहीं किया कि हम कौन हैं ? यह संसार क्या है, इसमें दुःख सुख क्यों है ? हम यहां किस निमित्त आये हैं ? हमारा लक्ष्य क्या है और हम जा किस ओर रहे हैं ?

'मैं कौन हूं ?' वेद ने बतलाया 'अहम् सो अस्मि यः पुरः सुते ।" अर्थात् मैं वही हूं जो पूर्व सदन में था। मैं अजर हूं, मैं अमर हूं पहले भी था, आज भी हूं, आगे भी रहूंगा। अज्ञान के अन्धकार को जब तक वेद की ज्योति से हम दूर नहीं कर पायेंगे तब तक हम कदापि अपने आपको न जान सकेंगे और बिना अपने स्वरूप को जाने, यों ही व्यर्थ के बंधनों संघर्षों और प्रतापों से आच्छादित होकर बारम्बार जन्म और मरण के चक्रों में कर्मानुसार नानाप्रकार के शरीरों को धारण करते हुए घूमते रहेंगे।

आइये ऋषि बोध के इस पुनीत पर्व पर जिज्ञासु बनकर सच्चे आचार्य परमात्मा की शरण में चलें और देखें कि उस की पुनीत वेद वाणी ऋग्वेद के मण्डल ६ के सूक्त ९ में हमें क्या आत्म बोध करा रही है ? —लेखक]

प्रथम मन्त्र–

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्नि स्तमांसि ।।

भाषार्थ–[अहः च कृष्णम्] एक कृष्ण दिवस है [अहः अर्जुनं च] और एक श्वेत दिवस है [वेद्याभि] ज्ञातव्य घट-नाओं सहित [रजसी] द्यौ और पृथिवी में [विवर्तेते] घूमते

रहते हैं। [राजा न जायमानः] राजा के समान प्रकट होकर [वैश्वानरः अग्निः] वैश्वानर अग्नि अर्थात् सूर्यवत् आत्मा (ज्योतिषा] ज्योति से [तमाँसि] तिमिर को [अवां-तिरत्] छिन्न-भिन्न कर देता है।

व्याख्या—प्रत्येक मानव अपने जीवन को सुखमय चाहता है। सुख-प्राप्ति के लिये ही उसके सारे प्रयत्न होते हैं। यह सुख वह अपने लिये और जिन्हें वह अपना मानता है, उनके लिये प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहता है। प्रयत्न प्रत्येक प्राणी सुख के लिये करता है, परन्तु फल प्रदान करने वाली जो एक सर्वोपरि शक्ति है, उसके न्याय नियम के कारण प्राणी को कुकर्मों के कारण दुःख भी भोगना पड़ता है। जीवन के यही शुक्ल और श्याम पक्ष हैं जिनका मन्त्र में वर्णन किया गया है। मन्त्र में कृष्ण व अर्जुन जो शब्द आये हैं वे न तो महा-भारत के ऐतिहासिक पात्र हैं और न ही गीता की पात्र शैली के दो प्रमुख पात्र हैं। वेद में इतिहास नहीं है। कृष्ण उसे कहते हैं जिसमें कृष अर्थात् खींचने की शक्ति हो। आकर्षण जिसमें हो, जिससे कोई आकृष्ट हो, जो आकर्षक हो, उसे कृष्ण कहा जाता है। कृष्ण शब्द का प्रयोग वेद मन्त्रों में परमात्मा, सूर्या व आत्मा के अतिरिक्त श्याम वर्ण या काले रंग के लिये भी होता है क्योंकि उसमें भी एक विशेषाकर्षण होता है। जो आकाश हमें पृथिवी पर से नीले रंग का दिखाई देता है और जिसमें सब ग्रह उपग्रह स्थित हैं, वह भी वास्तव में काले रंग का है। कृष्ण शब्द का प्रयोग इस मन्त्र में काले और अर्जुन शब्द का प्रयोग उसके विपरीतार्थ श्वेत के रूप में

किया गया है।

जीवन के सब दिन एक समान नहीं होते। कभी सुख है, कभी दुःख है। धूप-छांव के इस खेल में वह कौन है जिसे सुख-दुःख की अनुभूति होती है। दुःख-सुख का चक्र तो घूम रहा है। काले और श्वेत दिन तो कर्मानुसार बारी-बारी आ रहे हैं। परमात्मा की परम चेतना से जड़-जगत् जो चलायमान होता है, उसे दुःख-सुख की अनुभूति नहीं है। पृथिवी जिस परम चेतना के कारण घूमती है और जो परम सहनशीला तथा वेद के शब्दों में 'भूमि मृतमनः' है, उसे जितनी इच्छा हो, रौंद डालो, सूर्य और चन्द्र में भले ही कितने ग्रहण लग जायें, वहाँ अनुभूति नाम की कोई वस्तु उन पदार्थों में नहीं है। आनन्दमय परमात्मा इस सुख-दुःख की परिधि से परे है। यह बात पूर्णतयः सिद्ध करती है कि चेतना युक्त जीवों में जो चेतना है, वह परम चेतना का अंश नहीं है। उस विराट आनन्द-सिन्धु को हम बूंदें नहीं हैं। फिर हम क्या हैं? हमारी चेतनायें एक सदृश्य होते हुये भी न केवल शरीर भेद हैं वरन् मानव शरीर में तो विचार भेद, मानव भेद और कार्य भेद स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं। अतएव सिद्ध हुआ कि हम एक भाँति होते हुए भी पृथक् हैं। प्रत्येक अहम अपना एक पृथक् अस्तित्व रखता है, इसलिये प्रत्येक की अनुभूति में भी एक अन्तर झलकता हैं, और विचारशील इसीलिये कहीं अपने अन्तःकरण में एक जिज्ञासा को लेकर पुकार उठता है "मैं कौन हूं, मैं कौन हूं?"

प्रस्तुत मन्त्र सुख-दुःख से आच्छादित मानव को स्पष्ट

शब्दों में प्रत्युत्तर देते हुये कहता है—"वैश्वानरः अग्निः" किसी रूप में "राजा न जायमानः" जो आत्म अग्नि हमारे शरीर का संचाचन करती है, वह राजा के रूप में है। आत्मा भूपवत् इस शरीर में है। शरीर गृह है, आत्मा गृही है। शरीर राज्य है, आत्मा राजा है। गृह और राज्य गौण हैं, प्रमुख तो गृही और राजा हैं। हमत्त्व वस्त्र का नहीं वस्त्र पहनने वालों का है। राज्य की शोभा राजा से होती है। सुनसान गृह शोभा हीन है। जड़ चेतन के साथ संयुक्त होकर कर गतिशील होता है, इसीलिए महत्त्व चेतन तत्व का है। वस्तु बोध तो हो किन्तु आत्मबोध न हो कित्तु आत्म बोध न हो तो जीवन स्वस्तिमय नहीं है। आत्म-बोध न होने के कारण ही तो मनुष्य वस्तु बोध को अधिक महत्त्व देकर नाना प्रकार के कुकृत्यों में लीन होता है, और फलस्वरूप जीवन में काले दिनों को निमन्त्रण देता है, और श्वेत दिनों को दूर भगा देता है। "मैं आत्मा हूं, मैं चेतन हूं, मैं शरीर का राजा हूं, मैं इंद्रियों का इद्र हूं। शरीर के समस्त व्यापार मेरी इच्छानुसार चलते हैं।" ऐसा ज्ञान जब मानव-योनि में आत्मा को प्राप्त हो जाता है, तो आत्मा (ज्योतिषा) ज्ञान ज्योति से (तमांसि) तिमिर को, अन्धकार को (अबातिरत) विच्छिन्न कर देती है।

भौतिक जगत् में हम देखते हैं कि रात-दिन का एक चक्र अनवरत चल रहा है। रात्रि के तिमिर को सूर्य की ज्योति दूर कर देती है। सायंकाल का अन्धकार हो चला था, मैं अपने स्वाध्याय कक्ष में मन्त्रार्थ पर मननशील था, मेरी

नन्हीं बालिका ज्योत्सना ने कहा, 'पिता जी अँधेरा हो गया है, बत्ती जला लीजिये' मेरे अन्तःकरण में एक ध्वनि गुँजरित हो उठी—'वसन्त' तेरे जीवन की संध्या हो गई, अब तू भी दीप जला ले। भौतिक अन्धकार ज्योति से दूर होता है, तो आत्मिक अज्ञान तिमिर भी ज्ञान की ज्योति से दूर भागता है। जब आत्मा श्रुत और पठित सत्य को अनुभूत कर लेती है तो वह चिरन्तन सत्य ज्योति असत्य तिमिर को छिन्न-भिन्न कर देती है। जैसे मेघों को चीर कर तेजस्वी सूर्य चमक उठता है, वैसे ही ज्ञानमय आत्मा दुःख के मूल को विनष्ट कर आनन्द विभोर हो जाती है। जहाँ आनन्द पान होता है, वहाँ मन में शांति होती है, जिसके मन में शांति है, वह सर्वतः सुखी है। आत्म ज्ञानी ही जानता है, कि जैसे सूर्य का उदय और अस्त नहीं होता, केवल पृथिवी की परिक्रमा से रात-दिन का भेद होता है। ठीक उसी प्रकार सूर्यवत् आत्मा सदैव प्रकाशित रहता है। शरीर भेद कर्म का प्रतिफल है। जीवन के काले दुःखमय दिवस की अनुभूति अज्ञान के कारण है। आनन्दमय शान्तिप्रद ज्ञान की ज्योति ही एक समान श्वेत दिनों को जीवन में लाती है इसलिये आत्म ज्ञानी अपना आत्म जागरण करता है और दूसरों को जगाता है—

—दि० २८ फरवरी तथा १ मार्च को गुरुकुल महाविद्यालय ततारपुर का वार्षिक उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जावेगा। जिसमें आर्यजगत् के बड़े-बड़े विद्वान् व्याख्याता तथा भजनोपदेशक पधारेंगे। —मुनीश्वरानन्द सरस्वती

जागो ! सोने वाले जागो !!

जागो ! सोने वालो जागो !
अमृत वेला बीत रही है, अब तो आलस्य त्यागो ॥

मोह निद्रा में सो रहे हो,
आसक्तियों में रो रहे हो।
खोलो अपना ज्ञान लोचन,
तोड़ो बन्धन धागो ॥
जागो ...

देख रहे हो माया सपने,
जो नहीं होते हैं अपने।
ठग रही विषयों की ठगनि,
उससे दूर दूर ही भागो ॥
जागो ...

बीतेगी जब पाप रजनी,
आएगी तब ऊषा सजनी।
स्वागत करने लालिमा का,
उसमें तुम अनुरागो ॥
जागो ...

जगाने वाला जगा रहा है
पास अपने बुला रहा है।
'वसन्त' जाता शरण उसकी
तुम भी संग प्रभु के लागो ॥
जागो ...

द्वितीय मन्त्र

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित् पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ।।

भाषार्थः—[न अहं तन्तुं विजानामि] न मैं ताने को जानता हूं [न ओतुं विजानामि] न बाने को जानता हूं [समरे अत मानः] संघर्ष में गतिशील ज्ञान सम्पन्न ताना बाना बुनने वाले [यम् वयन्ति] जिसे बुनते हैं [न विजानामि] नहीं जानता [कस्यवित् पुत्रः] भला किसका पुत्र है [अवरेण पित्रा परः] पिता को अवर कर, पर होकर [इह] यहाँ इस विश्व में [वक्त्वानि वदाति] वक्तव्य कह सकता है ।

व्याख्याः—आत्म जिज्ञासु जब अपने 'स्व' को जानना चाहता है तो उसके सम्मुख जीवन क्या है ? यह एक प्रश्न उपस्थित होता है । वह भौतिक चक्षुओं से प्रत्यक्ष देखता है, कि शरीर चेतना युक्त होता है तो जीवन झलकता है, और चेतना के विलीन होते ही निष्क्रिय हो जाता है । यह निष्क्रियता ही मृत्यु है । हाड़ या चाम वही होता है, परन्तु उसमें कोई क्रिया नहीं है, क्योंकि कर्त्ता कहीं चला गया है । यह कौन कर्त्ता है, जो चला गया जिसके बिना यह ताना-बाना बिल्कुल सारहीन हो गया । यह ताना बाना क्या है, जिसमें प्रविष्ट होने पर चेतना गतिशील होती है । आत्मतत्व जिस

वस्तु तत्व के साथ संयुक्त होता है, वह वस्तु तत्व विभिन्न क्यों है ? नस नाड़ियों के ये ताने बाने क्या हैं ? ऐसी जिज्ञासायें केवल विवेकशील मानवों को ही होती हैं, पशु-पक्षियों को नहीं ? यह क्या रहस्य है ? सर्वोत्कृष्ट प्राणी ने पशु-पक्षियों और स्वजाति के शरीरों को चीर-फाड़ कर इन ताने बानों का पता लगाने का प्रयत्न किया। स्वतः महर्षि दयानन्द ने भी एक मुर्दे की चीर-फाड़ करके इस ताने बाने के रहस्य को जानना चाहा।

कितनी अलपज्ञ है आत्मा जो नहीं जानती कि यह ताना बाना क्या है, किसने और कैसे इसको बुना है। शल्य चिकित्सा करने वाले भले ही यह कह दें कि शरीर में कितनी नस व नाड़ियाँ हैं। शरीर में दो प्रकार की अति सूक्ष्म नलियों की भी वे विवेचना कर देंगे, कि समस्त शरीर से हृदय में आने वाली नलियाँ 'शिरा' हैं और हृदय से समस्त शरीर में जाने वाली 'धमनी' नलियाँ हैं जिनमें रक्त प्रवाह होता है। शिरायें अशुद्ध रक्त को हृदय में लाती हैं, और हृदय अशुद्ध रक्त को शुद्ध करके धमनियों द्वारा वापस शरीर में भेज देता है। शुद्ध-अशुद्ध रक्त का भेद, फेफड़ों का काम आक्शजन का कार्य, यह सब विशेषज्ञ बतला देगा किंतु ये ताने बाने का बुनने वाला कौन है ? नस नाड़ियों की इतनी सुन्दर रचना करके जो जीव तत्व काया धारण कर अपना व्यापार चलाता है, वह कौन है, यह बात वह भौतिक विज्ञानी नहीं बतला पावेगा। वह तो यह भी नहीं बतला सकेगा कि आँखें किस मसाले से बनाई गई हैं ? विशेषज्ञ न

हड्डियां बना सकता है, न नसें, न नाड़ियाँ, न वह इन तानों बानों से कोई शरीर गढ़ सकेगा ? वेद ने इसीलिये सत्य को व्यक्त करते हुये कहा है कि आत्म-तत्व से अनभिज्ञ तो यही कहता है 'अहं तन्तुं न विजानामि' अर्थात् मैं ताने को नहीं जानता 'न ओतुं विजानामि' बाने को भी नहीं जानता।

विश्व के समस्त विचारशील विद्वानों और दार्शनिकों की एक प्रमुख धारणा जीवन के सम्बन्ध में यह भी रही है, कि जीवन जो एक बहुत बड़ा रहस्य है, उसमें एक संघर्ष की प्रवृत्ति प्रधान है, और यह संग्राम तब तक है, जब तक शरीर में चेतना है। एक बार विश्वविद्यालय के कुछ छात्रों ने आत्म-तत्व पर मेरे व्याख्यान में अपने भौतिक विज्ञान के आधार पर प्रश्न किये। एक छात्र ने कहा "क्यों जी, यह आत्मा नाम की वस्तु कहाँ रहती है ?" मैंने जब कहा 'हृदयाकाश में' तो तुरन्त प्रति प्रश्न हुआ 'एक स्थान पर रह कर सारे शरीर का संचालन कैसे करती है ?" छात्रों का अनुमान था कि आत्मा की चर्चा करने वाले इस प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में आधुनिक विज्ञान से शून्य होंगे किन्तु जब चित्त, मन, हृदय का विस्तृत विवेचन मैंने किया, और स्वतः प्रमाण वेद मन्त्र उनके सम्मुख रखे तो उन्होंने मुझे परास्त करने की एक नई युक्ति सोची। उन्होंने प्रश्न किया 'आप कहते हैं कि आत्मा रूपी राजा जब शरीर को छोड़ कर चला जाता है, तो पञ्च भूतों से निर्मित काया के भूत एक एक करके पृथक् होकर अपने-अपने विराट तत्वों में, मिल जाते हैं, परन्तु हम कहते हैं कि शरीर के विभिन्न अङ्गों को

बिना आत्मा के भी हम सुरक्षित रख सकते हैं, और सुरक्षित रखते भी हैं, तब आत्मा का क्या महत्त्व है ?

बालकों के अर्ध विकसित ज्ञान पर मनोविनोद करते हुए मैंने कहा–"शरीर के अंगों को ही नहीं, वरन् पूर्ण शरीर को भी रासायनिक तत्त्वों द्वारा आप सुरक्षित रख सकते हैं जैसे मिश्र देश की ममियां अब तक रखी हुई हैं, किन्तु आप उन नस नाड़ियों में जीवन नहीं फूंक सकते। आंख देख नहीं सकती, हाथ काम नहीं कर सकता, इसलिए केवल अस्थि पिंजर ही नहीं उस पिंजर को यन्त्रवत काम कराने वाला और फलस्वरूप जीवन संघर्ष में जूझने वाला जो प्रमुख सूक्ष्म जीव तत्व है, उसके बिना सब व्यर्थ है, इसलिए हम उस प्रधान तत्य को प्रधानता प्रदान करते हैं।

कैसी विडम्बना है कि आत्म ज्ञान से अनभिज्ञ अपने ताने-बाने से अनजान हम संसार के संघर्ष में रत होते हैं और हम में से जो कुछ अधिक जानकारी रखते हैं वे तो संसार के ताने बाने को भी बुनने का दम भरते हैं। संसार में आत्म ज्ञानी अपने जीवन संघर्ष में विजय प्राप्त करने के लिये सुविचारों का, सुभावनाओं का जो ताना बाना बुनता है, हम तो उससे भी अनजान रहते हैं। मेरे पास बैठा हुआ, मेरे समान ही एक अन्ध मानव मेरे लिए कौन-सा विचार रूपी तानाबाना बुन रहा है, मैं नहीं जानता। मैं कितना अल्पज्ञ हूं। जीवन के इस घोर समर में जहां उत्थान है, पतन है, विकास है, ह्रास है, उसमें कैसे विजयी होऊँ, आत्म ज्ञानी ऐसी जिज्ञासा से बोधत्व

की ओर जाता है । कहां से मैं ज्ञान प्राप्त करूं जो अपनी अल्पज्ञता दूर करूं । किसके ताने बाने को सम्मुख रखकर उस नमूने का अपना जीवन पट मैं भी बुनूं, यह रहस्य, रहस्य न रहे । संघर्ष में विजयश्री मेरे पग चूमे । मानसिक उलझनों में फिरे ऐसे आत्म जिज्ञासुओं के अन्तःकरण में प्रश्नरूपी विद्युत चमक उठती है—"मैं कौन हूं किसका पुत्र हूं ? हम सब किसके पुत्र हैं ? हम सब में भला किस भाई का ऐसा लाल है, जो अपने पिता को 'अवर' कर इस संसार में स्वयं 'पर' होकर, मुझे वक्तव्य से कृतार्थ करे, ज्ञानमय उपदेश दे और मुझे इस 'मेरे ताने-बाने' का तथा आत्मज्ञानियों द्वारा जीवन संघर्ष में विजय प्राप्त करने के लिये बुने निज जीवन पट का रहस्य बतलाये ? 'कौन है वह, कहां है वह ?'

प्रश्न की ध्वनि अपने पर व्यंग करके व्योम में विलीन नहीं हो जाती है । जिसने सारे जगत् का ताना बाना बुना है, अनन्त सृष्टियों और जीवों के ताने बाने बुने हैं, जिसकी कृपा से आत्म ज्ञानी ब्रह्म ज्ञानी वनकर जीवन के सुन्दर पट बुनते हैं, वह परमपिता अपने योग्य नहीं सुयोग्य पुत्रों को पावन वेद वाणी के माध्यम से कहता है—

'तन्तुँ तन्वन् रजसो भानुमन्विहि,
ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।।
—ऋ० १०-५३-६

अर्थात् इस विश्व में जीवन के ताने बाने बुनने के निमित्त प्रकाश का अनुकरण कर और बुद्धि से परिष्कृत किये हुए ज्योतिमय मार्गों की रक्षा कर ।

सर्व शक्तिमान् प्रभो ! मैं अन्धकार में हूं, मुझे प्रकाश दो, मुझे मार्ग दिखाओ, मैं कौन हूं मैं कैसा जीवन पट बुनूं जो विजयी हो जाऊं, इस जीवन समर में तो परमपिता की वेद ध्वनि पुनः गूंजती है–

'अयुद्ध इद्युधा वृत्तं शूर आजति सत्वभिः। येषामिन्द्रो युवा सखा॥'
[ऋ० ८-४५-३, साम० १३४०]

अर्थात् जिसका सखा युवा इन्द्र है, वह शूर वीर आत्मा युद्ध के वृत्तों में घिरे हुए भी बिना युद्ध किये केवल सत्त्व के आधार पर विजयी हो सकता है।

तो वह दिव्य आत्मा ही है जो अपने परमपिता परमात्मा से मुक्त होकर आत्मा के रहस्य को जानता है और सुन्दर जीवन पट बुनते हुए इन भौतिक बन्धनों को तोड़ते हुए, सत्य उपदेश करता है।

गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास (उड़ीसा)

का वार्षिकोत्सव १५ से १७ फरवरी ६९ ई० को समारोह से मनाया जायगा। इस अवसर पर अनेक पूज्य संन्यासी महात्मा विद्वान् उपदेशक नेता, और भजनोपदेशक पधारेंगे। इसी अवसर पर वनवासी संस्कृति सम्मेलन तथा शुद्धि समारोह भी होंगे, जिनमें वनवासी संस्कृति की रक्षार्थ विचार किया जायगा। —दयानन्द व्याकरणाचार्य, आचार्य

सोने वाले राही जाग !

सोने वाले राही, जाग !
खोल दे तू मीलित लोचन, निद्रा आलस्य त्याग ।।
सोने···

कौन है तू आया कहां से, जग में तेरा धाम कहां है ।
कैसा तेरा ताना बाना, जल रही है जिसमें आग ।
सोने ···

लूट रहे निद्रा में तुझको, शत्रु तेरे हैं दुःखदायी ।
छल रही माया की छलना, डस रहे विषयों के नाग ।।
सोने ···

आसक्तियों की इस नगरी में, पग-पग पर हैं पाप के डेरे ।
उठ सजग हो जीवन राही, दामन को रख तू बेदाग ।।
सोने ···

ज्योति वाला तेरा प्रीतम, पग-पग पर पथ को दर्शाए ।
प्रेम में जिसके सच्चाई, उससे ही कर तू अनुराग ।।
सोने ···

डा० मंगलदेव की पत्नी का देहावसान !

अत्यन्त दुःख के साथ सूचित किया जाता है कि बृहस्पतिवार २३-१-१९६९ को प्रातः १।। बजे मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सावित्री देवी का स्वर्गवास तिलक रोड, मेरठ, में मेरे पुत्र डा० सुरेशचन्द्र रस्तोगी के निवास स्थान पर हो गया ।

तृतीय मन्त्र–

स इत् तन्तुं स वि जाना त्योतुं स वक्त्वान्युतुथा वदाति ।
य ईं चिकेत दमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन् ॥

भाषार्थ–[सइत्] वह ही इस [तन्तुं विजानाति] ताने को जानता है [स ओतुं विज्ञानाति] वही बाने को जानता है [सः] वही (ऋतुथा) ऋतु-ऋतु में [वक्त्वानि वदाति] वक्तव्यों को कहता है [यः अमृतस्य गोपाः] जो अमरता का संरक्षक [अवः चरन्] एक ओर अवर होकर [अन्येन परः] दूसरी प्रकार 'पर' होकर [पश्यन्] देखता हुआ [ईं चिकेतत्] इन सब को जानता है।

व्याख्या—जिज्ञासु आत्मा विश्व के ताने बाने को बुनने वाली परम आत्मा को अपनी आत्मा में अनुभूति कर लेता है और वेदानुसार "विष्णो कर्माणि पश्यत् यतो व्रतानि पश्पशे । इन्द्रस्य युज्य सखाः" सर्वव्यापक परमात्मा को अपना सखा मानकर, विश्व में उस सर्व व्यापक परमात्मा के कार्य कलापों को देखकर अपने कर्मों को तदनुकूल कर लेता है, तो वह उस सर्वज्ञ का निरन्तर संगतिकरण करने के कारण ही ताने-बाने के रहस्य को भलीभांति जानता है ।

परमपिता परमात्मा ही हमारा सच्चा आचार्य और गुरु है । जब जगत् के भौतिक पिता अपने जिज्ञासु बच्चों को सब प्रकार से शिक्षित व दीक्षित करते हैं तो यह कैसे सम्भव है

कि वह जगत् पिता अपने सुयोग्य पुत्रों व पुत्रियों की जिज्ञासाओं का उत्तर न दे और शङ्काओं का समाधान न करें। यह बात नितान्त सत्य है कि ये शंकाएं व जिज्ञासाएं तब तक हैं, जब तक प्रत्यक्ष दर्शन नहीं है। आत्म ज्ञान की अभिलाषा करने वाले सच्चे और पवित्र साधक पर जब परमेश्वर की कृपा होती है और योग की स्थिति में वह अपने पूर्व जन्मों और मृत्यु को देखता है तो विश्व की कौन-सी वह शक्ति है जो पुनर्जन्म के सम्बन्ध में उसे जिज्ञासा व शङ्का में डाल सकती है।

कर्मानुसार परमेश्वर ने शरीर रूप के जो ताने बाने आत्मा के ऊपर बनाकर डाले हैं, जब आत्मा योग के माध्यम से उन्हें जान लेता है तो वह आत्मबोध को प्राप्त होकर, स्वार्थ की परिधि से बाहर निकलकर परमार्थ के वृत्त में घूमने लगता है। ज्ञान सम्पदा से सम्पन्न होकर वह ज्ञानोपदेश करता है। कैसे करता है तो इस मन्त्र में कहा है "ऋतुथा" अर्थात् ऋतु अनुसार समयानुसार, समय-समय पर। परमात्मा ने अपनी अमृत वेदवाणी में ऐसे अमृत ज्ञानियों को भव्य प्रेरणा देते हुए कहा है—'विवक्षत इवते मुखम् ब्रह्मन मात्वम् बहु वदः" अर्थात् तुझे मुख भावों को व्यक्त करने के लिये अवश्य दिया है परन्तु हे ज्ञानिन्! तू अधिक मत बोल!

वर्तमान युग में अज्ञानी दिन-रात बोलते हैं मंच पर बोलने के लिये प्रति स्पर्द्धा करते हैं, जो कुछ विष वमन करते हैं, वह कहाँ तक सार्थक होता है, इस तथ्य को वे भली-भाँति जानते हैं किन्तु प्रचार के वर्तमान युग में असली को नकली

और नकली को असली करने में जिस वाणी का वह दुरुपयोग करते हैं, उससे कोई समस्या सुलझती तो है नहीं वरन् और उलझती चली जाती है। हमारे आत्म ज्ञानी वैदिक युग में जब वानप्रस्थी होते थे, तो जिज्ञासु उनकी शरण में स्वयम् जाते थे। जिज्ञासु अधिक बोलते थे, ब्रह्मज्ञानी तो नपे-तुले शब्दों में उनके प्रश्नों का उत्तर देते थे। महर्षि स्वामी दया-नन्द सरस्वती ने कितना सुन्दर कहा है, कि जैसा देश हो, जैसा काल हो और जैसा पात्र हो, उसके अनुसार ही तो सत्य धर्म व्यवस्था करनी चाहि।

पुराने शरीरों को छोड़कर नये शरीरों को कर्मानुसार धारण करने वाला यह आत्मा 'अमृतस्य गोपाः' है अमर होते हुये वह शरीर धारण करता है। गतिशील होते हुये वह अपने नये शरीर की रक्षा करता है। शरीर में होते हुए भी ऐसा गुप्त और अदृश्य रहता है, कि इन भौतिक चक्षुओं से दृष्टि-गत नहीं होता। अज्ञानी सोचता है कि वह सन्तान का जनक है, आत्म बोधत्व को प्राप्त आत्मज्ञानी जानता है, कि वह केवल परम सत्ता के निर्देशानुसार एक माध्यम-मात्र है। भौतिक जगत् में जिस शरीर को उसने धारण किया है, और लोकाचार में जिसे 'पिता' कहता है। उस जन्म से पूर्व वह किसी रूप में वर्त्तमान था, और जिस सन्तान को जन्म देकर वह निज शरीर त्याग कर देगा, उसके पश्चात् भी वह वर्त्त-मान रहेगा। पिता से 'अवर' और 'पर' का यही सत्य स्वरूप है। ज्ञान में कभी कोई आत्मा किसी अन्य आत्मा से अधिक और कभी न्यून होता है। विभिन्न जन्मों में कर्मानुसार

सम्बन्धों में तथा निज इच्छाओं और प्रयत्नों से ये न्यूनतायें और दीर्घतायें आती जाती रहती हैं।

आत्मज्ञानी चूँकि बोधत्व को प्राप्त होकर सत्य का साक्षात्कार करता है, इसलिए वह जब समय-समय पर बोलता है, तो सत्य वाणी बोलता है। वह चूँकि सब कुछ स्पष्ट देख चुका है, और सब रहस्यों को जान चुका है। इसलिये उसकी सत्य वाणी में बल होता है, और वह युग प्रवर्त्तक होता है। एक बार महात्मा बुद्ध से उनके शिष्य फगुण के सम्बन्ध में एक शिकायत की गई, कि वह अन्य बौद्ध भिक्षुओं से लड़ता झगड़ता है तथा बौद्ध भिक्षुओं का अधिक संगतिकरण करता है। महात्मा बुद्ध तत्त्वदर्शी थे, उन्होंने फगुण को बुलवा भेजा, और नपे-तुले शब्दों में कहा—'जब भीतर बुराई रहती है तो वह बाहर कभी नकभी किसी न किसी रूप में अवश्य फूट निकलती है, अतएव आत्म-सुधार के लिये बुराई को निमूल करना आवश्यक है, अन्यथा यदि उसका बीज भी शेष रह गया तो अंकुर फूट कर वृक्ष बन जायेगा। महात्मा ने शिष्य को समझाने के लिये एक दृष्टांत भी दिया कि किसी नगर में एक देवी थी, जिसका बाह्य रूप तो बड़ा आकर्षक था, पर भीतर वह दानवी थी। लोग उसके बाह्य रूप पर मुग्ध होकर उसकी पूजा करते थे, किन्तु उसकी दासी जो उसके भीतरी क्रोध और लोभ आदि के रूप से अवगत थी, उसे जब एक बार काम से देरी पर आने के कारण देवी ने भला-बुरा कहा तो प्रतिशोध भावना के कारण वह दासी बारम्बार देरी से आने लगी, तो क्रोध के आवेग में

देवी ने उसे भयङ्कर रा। दासी ने बाहर गली में निकल कर सब लोगों को एकत्रित किया, और भण्डाफोड़ किया कि जिसे सब उच्चता की प्रतिमा समझते हैं, वह कैसी भयङ्कर राक्षसी है। आत्म ज्ञानी के नपे-तुले सत्य शब्दों ने वह चमत्कार दिखाया कि फगुवा फूट-फूट कर रोया और उसका स्थायी सुधार हो गया जो सम्भवतः किसी भी शारीरिक दण्ड से न हो पाता।

आत्म बोधत्व को प्रप्त देव जन अपनी वाग्देवी से जगत् का इसीभाँति कल्याण करते हैं और सदैव अपने को जागरूक रखते हैं। ✡ ✡ ✡

जाग रे अब रैन बीती !

जागरे अब रैन बीती।

चीर कर तम आवरण को, शुभ्र ज्योति नित्य जीती॥
जाग रे...

आर्य क्या सोते रहोगे, हाल अपना यूँ भुलाकर।
लाओगे कब इस धारा पर, वेद की धारा बहाकर॥
हो रहे मदहोष, बोलो, यह नशा क्या आज छाया।
लुट गया ऐश्वर्य सारा, और है सन्ताप पाया॥
जाग ! अब उत्थान करले, जिन्दगी जाती है बीती।

जाग रे...

भूल जा बीते दिनों को, आज निज उत्थान कर ले।
जूझ कर पथ कण्टकों से, विश्व का कल्याण करले।
द्वेष का परित्याग करके, प्रेम की सरिता बहा ले।
एक दिन बिछुड़े जो तुझ से, आज उनको गले लगा ले॥
देख दुनिया रह न जाए, अश्रुओं का नीर पीती॥
जाग रे…

एक क्यों रोता बिलखता, प्राण पथ पर त्याग देता।
एक क्यों सोता महल में, श्वान उसका क्षीर खाता।
आज इस वैषम्य में क्यों जल रहा संसार सारा।
लड़खड़ाती पाप नैय्या, दीखता क्यों न किनारा।
जाग रे…

आंक ले तू मूल्य अपना, है कसौटी पास तेरे।
देख ले अन्तर में अपने, पास जो कुछ भी है तेरे।
लक्ष्य तेरा क्या है मानव, जा रहा किस ओर तू।
खो रहा अनमोल जीवन, बोल क्या है पा रहा तू।
तेरे जीवन की यह हाय ! कैसी उल्टी आज नीति॥
जाग रे…

बढ़ रहे कोटि चरण जो, ध्येय पथ पर सीना ताने।
चीर कर बधाएं सारी, ज्ञान के दीपक जलाने।
तू भी बढ़ चल साथ उनके, ओ३म् का झंडा फहराने।
छोड़ दे तू तान अपनी, उनके स्वर में स्वर मिलाने।
'वसन्त' तेरी साधना में, जगमगाती दिव्य ज्योति॥
जाग रे…

चतुर्थ मन्त्र–

अयं होता प्रथमः पश्यतेमम् इदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं सजज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्या स्तन्वा वर्धमानः ।।

भाषार्थ–[अयम्] यह [प्रथमः होता] प्रमुख होता है [इदम्] इसे [पश्यत] देखो [मर्त्येषु] मरणशीलों के भीतर [इदम् अमृतं ज्योतिः] यह अमर ज्योति है। [अयं सः अमर्त्याः] इस अमरणशील ने [जज्ञे] जन्म लिया है [ध्रुवः आनिषत्तः] शरीर में स्थिर हो गया है [तत्व वर्धमानः] तत्व का विकास हो रहा है ।

व्याख्या—आत्म ज्ञानी चूंकि सदैव जागृत रहते हैं वे दूसरों को भी विस्मृति की स्थिति से निकालकर जागृति की स्थिति में लाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। मानव जीवन की तीन स्थितियां है। एक आत्म विस्मृति की, दूसरी आत्म जागृति की और तीसरी आत्म अवस्थिति की। आत्म अव-स्थिति के लिये आत्म जागृति का होना आवश्यक है। आत्म विस्मृति के कूप से निकालने के लिए जिस आत्म ज्ञान की आवश्यकता है, उसकी ओर प्रेरित करने के लिए मन्त्र बोध करा रहा है कि यह आत्मा क्या है। यह आत्मा जीवन यज्ञ का संचालक है। मानव जीवन एक पावन यज्ञ है। श्रेष्ठतम कर्म ही यज्ञ है। आत्म ज्ञानी जब जगत् में उस सर्व महान् के विराट यज्ञ को देखते है और अपने जीवन को यज्ञमय बनाने के लिये आदर्श के प्रतीक स्वरूप उस परमात्मा को सम्मुख

रखते हैं तो वेद के शब्दों में "तद् विष्णो परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्य्याः। दिवीव चक्षु राततम्।" के अनुसार वे सर्व व्यापक के परम पद को ही सदैव देखते हैं। उन्हें भीतर बाहर विराट् की ही ज्योति दृष्टिगत होती है। प्रत्येक रस में प्रभु का रस और प्रत्येक सुगन्धि में परमात्मा की गन्ध का आभास होता है। परमात्मा की सृष्टि में सतत और सर्वतः परमार्थ ही परमार्थ झलकता है। नदियां अपना जल स्वयम् नहीं पीतीं, मेघ अपनी तृषा बुझाने के लिए नहीं बरसते, वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते। उस परम के विराट यज्ञ के इस सत्य स्वरूप को देखकर आत्म ज्ञानी अपने जीवन को भी यज्ञ मय बनाता है। अपनी पावन हृदय स्थली पर जीवन यज्ञ करता हुआ स्नेहरूपी घृत सुभावनाओं की सामग्री और सुविचारों की समिधा की आहुतियां डालता चला जाता है और 'इदम् नमम्' यह मेरा नहीं, यह मेरे लिए नहीं है। यह तो इन्द्र प्रजापति, सोम, वरुणाए के लिये हैं।

सुपावन जीवन यज्ञ में देवों का संगतीकरण, परमेश्वर के गुण धारण करने के रूप में उस परम शक्ति की पूजा तथा दान प्रतीक सर्वस्व लुटाने को प्रस्तुत, आत्म बोधी अपने ज्ञान मय उपदेश में श्रोताओं से उनके जीवन निर्माणार्थ एक ही बात कहता है—'इदम् पश्यत' इसे देखो—'किसे इदम् अमृतं ज्योति' यह अमर ज्योति है। अपने भीतर जो अजर अमर ज्योति है बिना उसका बोध हुए यज्ञमय जीवन नहीं बनता। यह अमर ज्योति कर्मानुसार 'अज्ञे' शरीर रूप में अवतरित होती है और 'ध्रुवः आनिषत्तः' उसमें स्थिरता को प्राप्त

होकर 'तत्त्व वर्धमानः' तत्त्व का वर्णन कर, महिमा को प्राप्त होती है। जो अपने शरीर को धारण करने वाली ज्योति को देखते हैं, उसका बोध प्राप्त करते हैं, वे जीवन में अपने को पहले स्थिर बनाते हैं फिर तत्त्व ज्ञान को धारण कर आत्म-विलास करते हैं। जो ऐसा नहीं करते, वे अस्थिर होकर भटकते रहते हैं और तत्त्वहीन होकर बारम्बार जन्म और मरण के चक्र में घूमते रहते हैं। स्थिर और अस्थिर का रूप इस दृष्टान्त से समझिये।

दो व्यक्ति एक मार्ग पर चले जा रहे थे। एक ने दूसरे से पूछा—'क्यों भाई, अमुक ग्राम यहाँ से कितना दूर है?' उत्तर मिला 'पाँच कोस' मैं कितनी देरी में वहाँ पहुंच जाऊँगा?'

'चले चलो'

प्रश्न कर्त्ता ने पुनः प्रश्न दोहराया, उत्तर पुनः यही मिला 'चले चलो' पुनः दो बार प्रश्न किया गया और बार-बार यही उत्तर मिला 'चले चलो, चले चलो।' पाँचवीं बार के प्रश्न के उत्तर में कहा गया 'साढ़े तीन घण्टे में'

'क्या पहले नहीं बतला सकते थे।' पहले व्यक्ति ने खीज कर कहा। दूसरे ने बड़ी शान्ति से कहा 'बिना तुम्हारी चाल को देखे मैं कैसे समय का अनुमान कर सकता था।

प्रथम अविवेकी वह है जिसे बोध नहीं है, इसलिये वह अस्थिर है, अशान्त है। दूसरा तत्त्व ज्ञानी इसलिये है कि उसने आत्मबोध किया हुआ है, और वह स्थिर है। तत्त्व दर्शन के लिये स्थिरता चाहिए, जो बिना उस अमर ज्योति

को देखे हुए नहीं मिलती। अमर ज्योति ही यज्ञ की संचालिका है, ऐसा बोध हुए बिना आत्म जिज्ञासा भी तो नहीं होती, अतएव स्वप्नवत उस आत्म विस्मृति से हमें जागृति की अवस्था में आना है, और उसके निमित्त परमात्मा की जिस भौतिक सृष्टि के कार्यों को हम इन भौतिक चक्षुओं से देखते हैं, उन पर गहराई से विचार करते हुये हमें अपने तीसरे शिव नेत्र अर्थात् ज्ञान का लोचन खोलना है, ताकि पाप रूपी रजनी बीते और मङ्गलमय प्रभात हमारे जीवन में आये।

* *

आर्यसमाज शिकोहाबाद का उत्सव

आर्यसमाज शिकोहाबाद का वार्षिक उत्सव २१ फरवरी से २४ फरवरी सन् १९६९ तक मनाया जायगा। विद्वान्, संन्यासी, भजनीक, उपदेशक पधारें। पुस्तक विक्रेता अवश्य आवें। —दयाराम गौड़ मन्त्री

आवश्यकता है

एक २४ वर्षीय कायस्थ स्नातक विद्यार्थी बहुत बड़े व्यवसायी के लिए सुन्दर, स्वस्थ शिक्षित कन्या की।

पत्राचार का पता—ए० झा०, मोतीझील,
मुजफ्फरपुर (बिहार)

आया मंगलमय प्रभात

आया मङ्गल मय प्रभात ।

उदित हुई है ज्ञान लालिमा, बीत गई है तम की रात ।
आया......

दूर हुई सब चिन्ता मेरी, मिट गए सब मेरे संशय ।
बढ़ चला ज्योति के पथ पर, सर्वथा होकर मैं निर्भय ।
परमेश्वर अब साथी मेरा, पग-पग पर पथ को दर्शाता ॥
आया......

मेरे हृदय के निर्मल मन में, आच्छादित हैं सोम घटाएं ।
बरस रही हैं बूँदें छम-छम, बह रही पावन धाराएं ।
आनन्दित है जीवन मेरा, मधुर ऐसी है बरसात ॥
आया......

मन मन्दिर में मैंने जब से, ज्ञान का है दीप जलाया ।
स्थिर हुआ जीवन में अपने, मन का मैंने चैन है पाया ।
शुभ्र ज्योत्सना की ज्योति, मेरे मन को है हर्षात ॥
आया......

मेरे जीवन की बगिया की, आत्म ज्योति ही है स्वामिन ।
सुन्दर सुरभित सुमनों से जो, पुलकित करती मेरा मन ।
रहता है मधुमास निरन्तर, 'वसन्त' को जो मस्त बनात ॥
आया......

पंचम मन्त्र–

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वियन्ति साधु ॥

भाषार्थः—[ध्रुवं ज्योतिः मनः] ध्रुव ज्योति से युक्त मन [निहितम्] निहित है [पतयत्सु अन्तः जविष्ठम्] गतिवान पदार्थों में सबसे अधिक गतियुक्त है [दृश्ये] देखने के लिये [विश्वे देवा] समस्त देवगण [समनसः] मन के साथ [सकेताः] सज्ञान हो कर [साधु] सरलता से [एकं] क्रतुम्] एक क्रतु को [अभिवियन्ति] आगे ले जाते हैं ।

व्याख्याः—आत्म-बोध होने पर मनुष्य में आत्मना ऊँचा उठने की एक स्वाभाविक इच्छा जागृत होती है । संसार में मानव बहिर्मुखी अधिक होता है । जिस दृश्य जगत् से उसका सम्बन्ध रहता है वहाँ जब अन्य मानवों में वह स्वार्थ का बाहुल्य देखता है तो देखे और सुने के संस्कार उसके चित्त पर पड़ते हैं । भौतिक जगत् में देखते हुये भी आत्मा उसे न सुना जाये । वैसे संस्कारों की छाप अन्तःकरण पर न पड़े और महान् संकल्प की पूर्त्ति में आत्मा डाँवाडोल न हो । इन्द्रियां सब नियन्त्रण में रहें । न बुरा देखें न बुरा सुनें । चंचलता समाप्त हो जाये और स्थिरता आ जाए, इसके लिये अभ्यास की आवश्यकता है । मर्म को न जानकर कोरे अभ्यास मात्र

से ही सिद्ध नहीं होती, इसलिये जिन कर्मेन्द्रियों और ज्ञाने-न्द्रियों से आत्मा को महान् सङ्कल्प की पूर्त्ति के निमित्त काम लेना है, उनके व्यापार को भी समझना अत्यावश्यक है।

ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों से आत्मा जिसके माध्यम से काम लेती है, उसे मन की संज्ञा दी गई है। यह मन क्या हैं, कहाँ स्थिर है, क्या करता है और क्यों करता है, आत्मा जागृति कर्त्ता को इसका भी ज्ञान होना आवश्यक है—

मानवीय शरीर के भीतर मस्तिष्क और हृदय को विशेष महत्त्व दिया जाता है। पाश्चात्य विज्ञान वेताओं की अब तक यह धारणा थी कि मस्तिष्क ही शरीर की प्रेरणा का केन्द्र है, किन्तु इधर नये अनुसन्धानों से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं, कि मानव हृदय में भी एक ऐसा केन्द्र है जो मस्तिष्क को उत्तेजित करता है, और जिसकी भाव तरंगें एक सैकण्ड में ८१ लाख मील की गति करती हैं। विचार तरङ्गों से यह गति तीव्र है क्योंकि वे एक सैकण्ड में ६७,२०,००० मील से गति करती हैं। यथार्थ यह है कि मानवी हृदय में दो केन्द्र हैं, एक चेतना केन्द्र (entre f energy) और दूसरा संकल्प केन्द्र (Centre of emotias) जिससे भाव तरङ्गें उठती हैं। यह संकल्प केन्द्र ही मन है। यह कहाँ है तो वेद ने कहा है "हृत प्रतिष्ठम" उदर और वक्ष के मध्य जो दशां-गुल हृदयाकाश है, वहाँ मन स्थित है। मन के अन्दर चित्त है और चित्त के भीतर आत्मा है। हृदयाकाश में अति सूक्ष्म अवकाश में आत्मकोष के वृत में सूर्यवत् आत्मा जगमगाता

है। चित्त आत्मा को अपनी परिधि में घेरे हुये है और चित्त को मन की परिधि ने घेरा हुआ है।

चित्त चेतना केन्द्र है, मन संकल्प केन्द्र है। ये दोनों भौतिक हैं, और आत्मा की ज्योति से प्रचेतित होकर कार्य-रत होते हैं। आत्मा की इच्छायें चित्त के केन्द्र से संकल्प केन्द्र के माध्यम से मस्तिष्क को उत्तेजित करती हैं। मस्तिष्क चिन्तन करता है। विवेक स्मृति और निष्कर्ष जो बुद्धि के तीन अङ्ग हैं, जब योजना बना लेते हैं तब इन्द्रियाँ कार्थरत होती हैं। प्रस्तुत मन्त्र में ध्रुव ज्योति वाला इस मन को कहा गया है। क्योंकि अजर-अमर आत्मा की ज्योति से ही यह कार्या रत होता है। वेद ने इसे 'ज्योतिषां ज्यौति-रेकं' कहा है। यह मन बड़ा चंचल है, जागृति सुषुप्ति में दूर-दूर तक जाता है, अतिशय वेगवान है। आत्मा के महाज्ञ् संकल्प को आगे ले जाने वाला यही हैं, इसलिए समस्त देव गण जो आत्म जागरूक होते हैं, वे मन से युक्त होकर, सज्ञान होकर अतिशय सरलता और साधुता से अपने एक महान् क्रतु की पूर्ति में लीन हो जाते हैं। सन्त कबीर ने साधकों को सत्य की ओर संकेत करते हुए कहा था—

मनका फेरत युग गया, फिरा न मन का फेर।
करका मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥

वह कौन-सा एक क्रतु है जिसकी पूर्त्ति के लिये साधक को मन साधना होता है। मनुष्य के जीवन में असंख्य

ऋतु हैं, जो मन के संकल्प से होते हैं फिर वह एक महा संकल्प कौन-सा है, जिसे पूर्ण करने का इस मन्त्र में उल्लेख है। मानव जीवन का एक विशिष्ट लक्ष्य है, जिसे परमात्मा की प्राप्ति कहते हैं। पशु-पक्षी योनि में न कोई साधना सम्भव है, न कोई आत्म व ब्रह्म ज्ञान। केवल मानव योनि ही ऐसी सर्वोत्कृष्ट योनि है, जहाँ सफल ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति के साथ आध्यात्मिक ऐश्वर्यों की भी उपलब्धि होती है। परमात्मा का साक्षात्कार होता है, और परमात्मा रूपी दिव्य अग्नि में पड़ कर जब आत्मारूपी कोयला दमकने लगता है, तो विश्व का परम कल्याण करते हुये कर्माधार पर एक चतुर्युगी तक मोक्ष अथवा मुक्ति का आनन्द भी लेता है। परमपिता परमात्मा से योग अथवा मुक्ति करण ही वह एक ऋतु है, जिसे ध्रुव ज्योति को मन के संकल्प से आगे ले जाना होता है।

सोया भग्य जगा दे

मेरा सोया भाग्य जगा दे।

कर प्रचेतित आत्मा मेरी, राग द्वेष सब दूर भगा दे।
मेरा...

घोर अविद्या की है छाई, मेरे जीवन में अँधियारी।
दूर करूँ मैं कैसे उसको, जब तक हो न कृपा तुम्हारी।
आज मेरे मन मन्दिर में, ज्ञान का तू दीप जला दे॥
मेरा...

श्री पं. प्रेमचन्द्र जी शर्मा, सदस्य विधान सभा

अलीगढ़ जिले के सर्वप्रिय कांग्रेसी नेता, और आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान मन्त्री श्री पं० प्रेमचन्द्र जी शर्मा हाथरस, आप मध्यावधि चुनाव में विजयी हुए हैं।

आनन्द के तेरे सिन्धु में, कब से बैठा हूं मैं प्यासा।
दर्शन और मिलन की तेरे, अपने हृदय में लेकर आशा।
आनन्दमय गोदी में अपनी, सोम सुधा का पान करा दे॥
मेरा...
साधनामय इस जीवन में, सफल हो प्रभु साधना मेरी।
आवागमन के फेर में फिर से, होवे प्रभु न फेरा-फेरी।
भव सिन्धु से 'वसन्त' की नैय्या अब प्रभु पार लगा दे॥

षष्ठ मन्त्र—

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षु र्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूर आधीः किं स्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ।।

भावार्थ—(मे कर्णा) मेरे कान (वि पतयतः) इधर-उधर भटक रहे हैं (चक्षुः वि पतयति) नेत्र इधर-उधर भाग रहे हैं (इदं ज्योति) यह ज्योति भी (यत् हृदये आहितं) जो हृदय में निहित है (विपतयति) इधर-उधर भटक रही है (मे मनः) मेरा मन (दूरे आधीः) बहुत दूर (विचरति) विचरण कर रहा है (किं स्विद् व क्ष्यामि) भला मैं क्या कोई विशेष बोल सकूंगा (किमु नू मनिष्ये) क्या चिन्तन कर सकूंगा ।

व्याख्या—इस संसार में लक्ष्य विहीन मानव भटकता रहता है, वह अस्थिर होता है । जो अस्थिर होता है, वह अशान्त होता है, और जो अशान्त होता है वह आनन्द अमृत का पान नहीं कर सकता । प्रस्तुत मन्त्र में ऐसी ही अस्थिरता व अशांति का उल्लेख है । जो भटक रहे हैं वे न चिन्तन कर सकते हैं और न ही साधिकार विशेष अभिव्यक्ति कर सकते हैं । भटकने वालों की बड़ी दुर्दशा होती है । मुझे एक बहन की दुःखभरी कहानी सुनने को मिली थी । वह बी. ए. पास थी, विवाह होने पर पति से अनबन होने के कारण घर से

निकल पढ़ी और उसकी दुर्दशा यहां तक हुई कि अनपढ़ और गँवार व्यक्तियों तक् ने उसके सतीत्व को लूटा और उसके आभूषणों को बेच व खाकर उसे दर-दर की भिखारिन बना दिया।

प्रत्येक व्यक्ति को यह अनुभव निज जीवन में होता है कि वह बाहर चाहे कितने ही सुख व आराम से क्यों न रहे, उसे वास्तविक शान्ति तो अपने घर में ही आकर मिलती है। आत्माओं का भी एक धाम है जिसे परमात्मा का परम धाम कहते हैं। जब तक आत्माएं मनुष्य योनि में आकर और साधना के माध्यम से परमेश्वर के दर्शन और मिलन के निमित्त परम धाम पर नहीं पहुंचतीं वे शरीरों में भटकती रहती हैं।

यह संसार है क्या परमात्मा का आनन्दमय खेल। एक चक्र चल रहा है जिसमें क्रमानुसार सब घूम रहे हैं। क्या सूर्य्य, क्या चन्द्र क्या पृथ्वियाँ सब उस सूत्रधार के नियमानुसार गतिशील हैं। चेतन प्राणियों के जो असंख्य शरीर दृष्टिगत होते हैं, उनमें एक सदृश आत्माएं हैं परन्तु उनका शरीर भेद कर्मानुसार हैं। ये सब पगम धाम से भटकी हुई आत्माएं हैं। भोग योनियों में अपने पाप फल को भोगकर जब मानव देह में आत्माएं आ जाती हैं जहां कर्म करने की स्वतन्त्रता है तो उस स्वतन्त्रता के दुरुपयोग से पुनः नीचे की योनियों में चली जाती हैं और प्रभु का खेल चलता रहता है।

असंख्य मानवों में से किसी एक में प्रभु की जिज्ञासा

उत्पन्न होती है। ऐसे अनेक मानवों में से कोई विरला प्रयत्नशील होता है और ऐसे अनेक विरलों में से कोई एक ऐसा होता है जो सतत साधनाशील होता हुआ, प्रभु की परीक्षाएं पास करता हुआ, आवश्यकता पड़ने पर बारम्बार मनुष्य रूप में जन्म लेकर और प्रत्येक जीवन में निरन्तर ऊँचा उठता हुआ लक्ष्य तक जा पहुंचता है। जिसे आत्म बोध हो चुका है वह यह भलीभांति जानता है कि साधना की आधार शिला स्थिरता है। स्थिरता के लिए धृति आवश्यक है अतएव धीरज से इन्द्रियों रूपी अश्वों को और मन रूपी सारथी को नियन्त्रण में करना आवश्यक है। जीवन रथ में राजा रूप में विराजमान आत्मा को इंद्रिय रूपी घोड़ों को मन रूपी सारथी जिसके हाथ में बुद्धि रूपी लगाम है, करना है। स्थिति क्या है मन रूपी सारथी चंचल है, लगामें ढीली हैं और अश्वी मनमानी चाल से दौड़ रहे हैं। इस स्थिति को अभिव्यक्त करते हुए मन्त्र कह रहा है कि मेरे कान इधर-उधर भाग रहे हैं, मन भी दूर-दूर जा रहा है, नाना प्रकार की चिन्ताओं में भटक रहा है जिसके फलस्वरूप हृदय में निहित आत्मा भी अशान्त होकर लक्ष्य से दूर भटक रही है। भटकने की स्थिति में क्या परमार्थ और प्रभु का चिन्तन होगा और जो स्वयं भटका हुआ है, वह क्या कहकर दूसरे का पथ-प्रदर्शन करेगा? इसलिए साधक को घोर तप के द्वारा इन्द्रियों का दमन और मन का शमन करना होता है जिसका मन्त्र में अपरोक्ष रूप से संकेत है।

★

मन मेरे आज परीक्षा तेरी !

मन मेरे आज परीक्षा तेरी।

पापों का है गहरा सागर, रैन पतन की अन्धेरी।
आसक्तियों ने जाल बिछाए, राहें सारी घेरीं॥
मन मेरे...

काम, क्रोध, मद, लोभ ने, बजाई है रण भेरी।
आवागमन के फेर में फिर न होवे हेराफेरी॥
मन मेरे...

बड़े भाग्य से पाई मैंने, देवों की यह देहरी।
पहुंचने को धाम प्रभु के, नैय्या तेरी सुनहरी॥
मन मेरे...

चेतना से मेरी प्रचेतित, तू है मेरा प्रहरी।
ज्योतियों की तू है ज्योति, कान्ति तेरी चेरी॥
मन मेरे...

उपजा तू शिव संकल्पों को, उनमें शक्ति घनेरी।
ओ३म् ओ३म् का जाप कर तू, पार लगेगी बेड़ी॥
मन मेरे...

सप्तम मन्त्र–

विश्वे देवा अनमस्यन् भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरो अवतुऊतये नो अमर्त्यो अवतु ऊतये नः ।।

भावार्थ–(अग्ने) आत्मन् ! (तमसि तस्थि वां सम् त्वाम्) तुझे अन्धकार में स्थित देखकर (विश्वे देवाः) समस्त देव (भियानाः) भयाकुल हो (अनमस्यन्) विनम्र होकर पुकार रहे हैं (वैश्वानरः) सर्वनायक ! (ऊतये) रक्षार्थ (नः अवतु) हमें प्राप्त हो जाए ।

व्याख्या–हृदय में निहित आत्म-ज्योति जब कुसंस्कारों से धूमिल होकर मलिन हो जाती है तो मन भी तम-अच्छन्न होकर श्रेष्ठ क्रतु अथवा उच्च संकल्प न करता हुआ मस्तिष्क को पवित्र भाव सन्देश नहीं देता । अस्थिर वृत्ति नाना प्रकार के अस्थिर विचारों को जन्म देती है और फलस्वरूप शरीर रूपी अयोध्या नगरी का समस्त राज्य अस्थिर हो जाता है । भौतिक जगत् में जब पूर्ण सूर्य ग्रहण होने के कारण दिन में भी घोर अन्धकार आच्छादित हो जाता है तो पशु-पक्षी जगत् भी अतिशय व्याकुल हो उठता है अतएव आत्म बोधत्व को प्राप्त आत्मा सदैव जागरूक रहता है क्योंकि उसका आत्म जागृति से पुनः आत्म विस्मृति में चले जाने का अर्थ है बने

बनाये खेल को बिगाड़ देना ।

प्रस्तुत मन्त्र में भावात्मक शैली में बड़े सुन्दर ढंग से आत्म जागृति को निरन्तर वनाये रखने के निमित्त अलंकारिक उपमाएं दी गई हैं । जब गृह स्वामी भयंकर रोगग्रस्त होने के कारण शैय्या पकड़ लेता है तो गृह स्वामिनी तथा गृह के अन्य सदस्य गण बारम्बार उससे अनुरोध करते हैं कि वह साहस न हारे । संयम से काम ले, ओषधि सेवन करे और भलाचंगा होकर पुनः अपने कार्य्यो को संभाले क्योंकि उसकी शिथिलता के कारण सब कार्य्य अस्त-व्यस्त हो रहे हैं । जब किसी राज्य का नरेश व्यसन और विलास मग्न हो आए तो मन्त्री गण और सेवक मनमानी करते हैं । उनमें मनमाने अत्याचारों से जब राज्य की घोर दुर्दशा होती है, प्रजा विद्रोह करती है तो स्थिति नियन्त्रण से बाहर होने के कारण राजा से पुनः जागरूक होने के लिये प्रार्थना की जाती है । यदि राजा नहीं सुनता तो प्रजा के साथ उसका भी नाश हो जाता है ।

अविवेकी आत्मा जब व्यसन और विलाश में निरन्तर रत रहता है । मन और इन्द्रियाँ मनमानी करती हैं । भोग सीमा को लाँघ जाता है, तो उसके फलस्वरूप नानाप्रकार के रोग शरीर को जर्जर कर डालते हैं । नेत्रों की दृष्टि मन्द पड़ जाती है । कान बहरे होने लगते हैं । दान्त कमजोर हो जाते हैं । कमर टेढ़ी हो जाती है । हाथ पैर काँपने लगते हैं । पाचन शक्ति शिथिल होने के कारण खाने-पीने का रस

समाप्त हो जाता है। चंचल मन बारम्बार अश्वियों को द्रुति गति से चलने के लिये भावों को कोड़े लगाता है, और निस्तेज, परास्त घोड़े स्वामी से दया की भिक्षा माँगते हैं कि सारथी को अत्याचार करने से रोको। व्यसन और विलास रूपी यम दूतों ने शरीर को मृत्यु की परिधि में पहूंचा दिया है, अतएव त्राहि-त्राहि करते हुए 'विश्वेदेवा' अर्थात् समस्त इन्द्रियगण 'भियाना:' व्याकुल होकर 'अनमस्यन्' विनम्रता से, पुकारते हैं, कि हमारी रक्षा करो। हमें मरण से बचाने के लिये 'अमर्त्यः' हे अमर आत्मा 'वैश्वानरः' हे सबके नायक आत्मा 'अतये' रक्षा के लिये 'नः अवतु' हमें प्राप्त हो।

किन्तु यह रक्षण तो तब प्राप्त होगा, जब आत्मा 'तमसि तस्थिवांसम्' अन्धकार के आवरण को चीर कर बाहर आये। आत्म विस्मृति से आत्म जागृति की अवस्था में आये और मन व इन्द्रियों को नियन्त्रण में करके महान् संकल्प की पूर्त्ति के लिये आत्म अवस्थिति की स्थिति में जा पहुंचे। इसलिये आत्म-बोध प्राप्त करने वाले को निरन्तर जागरूक होने के आवश्यकता है। सतत जागरूक होने के लिये स्वाध्याय आवश्यक है। दिव्य देवों का संगतिकरण करना और नित्य ही नहीं वरन् पल-पल अपना आत्म निरीक्षण करना ही सतत् जागरण है। भौतिक जगत् में घटित होने वाली घटनाओं की गहराई में जाना और उनका मन्थन करके सत्य को ग्रहण करना और असत्य का त्याग करना, शुचितापूर्वक प्रत्येक कर्त्तव्य को करना और भौतिक हानि की अपेक्षा

आध्यात्मिक लाभ के दृष्टि-कोण से अपने कर्मों को नापना, रात्रि को अन्तर्मुखी होते समय मन को शिव सङ्कल्प युक्त करना और प्रत्येक रात्रि को योग रात्रि बनाना, ये आत्म-जागरूकता के लक्षण हैं। सतत सचेत रहना, बुरे संस्कारों को भीतर जाने से रोकना, बुरी इच्छाओं को भीतर समूल नष्ट करना, चित्त की वृत्तियों का विरोध करना, मन की चंचलता को स्थिरता में परिवर्त्तित करना आत्म जागरूकों के प्रमुख कर्त्तव्य हैं। सम दृष्टि रखना, परमात्मा के गुणों को अपने भीतर धारण करना, सदैव परमार्थ में लीन रहना, परम शक्ति के सम्मुख विनम्र रहना, प्रार्थना से आत्मा को निर्मल रखना तथा सर्व नियन्ता के निरन्तर समीपस्थ होकर जीवन लक्ष्य को ही प्राप्त करना ही महान् संकल्प की पूर्त्ति है।

अतएव जिस ईश्वरीय ज्ञान वेद से संन्यासी दयानन्द ने बोधत्व को प्राप्त किया और अकेले मुक्ति की कामना न कर के समाधि सुख को छोड़कर सब की मुक्ति के निमित्त पुरुषार्थ किया तो आज ऋषिबोध के पावन पर्व पर हमारा आत्म जागरण की ओर जाना ही ऋषि के ऋण से उऋण होना है। देखें ऋषि ऋण से उन्मुक्त होने के लिए कौन आगे आता है और वेद ज्ञान से आत्म तृप्त होकर इस ऋणको चुकाना है।

★

मन मेरे मत तू घबराना

मन मेरे मत तू घबराना !
चलकर दुर्गम कण्टक पथ पर, गीत विजय के हरदम गाना ॥
मन मेरे···

जीवन के इस घोर समर में, हार जीत तो खेल पुराना ।
रुकना बढ़ना गिरना चढ़ना, धूप छांव सम खोना-पाना ॥
मन मेरे···

इक दिन तो इस नश्वर तन को, माटी में ही है मिल जाना ।
अजर अमर है आत्मा तेरी, बुन लेगी नव ताना-बाना ॥
मन मेरे···

जिसने है सब खेल रचाया, उस प्रभु को मत विसराना ।
दाता और प्रदाता सब का, शक्ति का अनमोल खजाना ॥
मन मेरे···

रात दिवस और सायं प्रातः, उसको ही तू शीश नवाना ।
जो है तेरा सच्चा साथी, उससे ही तू प्रीत बढ़ाना ॥
मन मेरे···

ज्योतिमय स्वामी की पावन ज्योति से निज दीप जलाना ।
मिट जाएंगे सारे संशय, मस्ती से होगा तू दीवाना ।
मन मेरे···

होगी कृपा जो उस प्रीतम की, रीझेगा यह सारा जमाना ।
पल में 'वसन्त' पलट दे बाजी, है अचूक निशाना ॥
मन मेरे···

हिमालय के हरे
आँवलों से निर्मित,
विटामिन 'सी' तथा
लोह से भरपूर
का
च्यवन प्राश
च्यवन प्राश
शक्ति संचय के
लिए आज से
ही सेवन करें
गुरुकुल काँगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार.

प्रार्थना के स्वर

[१]

जग राजक शुद्ध ओ३म् भगवान्, दुर्व्यसन दूरकर शुभ समान।
देव ओ३म् को करें नमस्ते, और करें उर से जयगान॥

[२]

स्वयं प्रकाश पुंज, प्रभु रचता, जग चन्द्र दिवाकर, अन्तर्यामी।
संसृति के पहले और बाद, उत्पन्न सकल का तू स्वामी॥
पृथ्वी, रवि, के आधार देव, तुम करो सफल साधना ध्यान।
देव ओ३म् को करें नमस्ते, और करें उर से जय गान॥

[३]

आत्म ज्ञान दाता बलदाता, है तुझे पूजता हर ज्ञानी।
तेरा शासन न्याय मोक्ष दे, दे दुःख मृत्यु आनाकानी॥
है परमेश्वर से प्रेम तभी, जब अन्तः का आदेश मान।
देव ओ३म को करें नमस्ते, और करें उर से जयगान॥

[४]

प्राणि अप्राणि जगत् का राजा, ईश एक महिमा अनन्त है।
पशु-मानव के तन की रचना, करता, भरता दिगगिन्त है॥
श्रीपति तू दाता सम्पति का, है सकल समर्पण भक्तिमान।
देव ओ३म् को करें नमस्ते, और करें उर से जयगान॥

[५]

तीक्ष्ण स्वभाव, सूर्य, धरा औ, सुख मोक्ष महा धारण करता ।
रचता अन्तरिक्ष लोकान्तर, जिनमें है जीव भ्रमण करता ॥
सम्पूर्ण शक्ति से भक्ति करें, हम सदा हृदय से धरें ध्यान ।
देव ओ३म् को करें नमस्ते, और करें उर से जयगान ॥

[६]

अन्यन कोई तू केवल है, जड़-चेतन जग का प्रजापती ।
तव आश्रय जो करै कामना, दो देव पूर्ति की उसे मती ॥
हों भू वैभव के स्वामी हम, पर सत स्वामी का करें ज्ञान ।
देव ओ३म् को करें नमस्ते, और करें उर से जयगान ॥

[७]

ईश्वर सुखदाता भ्राता सा, उत्पादक काम सफल करता ।
जन्मान्तर ज्ञाता, मोक्ष रूप, जो पाता स्वाधीन विचरता ॥
तू राजा न्यायाधीश गुरू, हिल-मिल सदा करें सम्मान ।
देव ओ३म् को करें नमस्ते, और करें उर से जयगान ॥

[८]

स्वप्रभा, ज्ञानरूप, जगप्रकाश, पूज्य अग्ने कर कृपा सर्वदा ।
पाप कर्म कर दूर सुपथ से, दो सुख भू विज्ञान सम्पदा ॥
नम नम नित स्तुति करें नमस्ते, देव हमें दो यह वरदान ।
देव ओ३म् को करें नमस्ते, और करें उर से जयगान ॥

—देवनारायण भारद्वाज उपमंत्री आ.स. अलीगढ़

महान् दयानन्द

महर्षि का काशी शास्त्रार्थ

✿ [illegible] आर्य [illegible] प्रतिनिधि सभा, वाराणसी

ज्ञा[illegible] की पिपासा को शान्त कर जब योगिराज महर्षि [illegible]यानन्द सरस्वती दुखी, भूली भटकी जनता को सच्चा मार्ग [illegible] के लिये प्रचार क्षेत्र में उतरे तो हरिद्वार पहुंच कुम्भ के अवसर पर पाखण्ड ख[illegible]नी पताका गाड़ वेदों का प्रचार आरम्भ किया। एक माह तक प्रवचन, शंका समाधान, शास्त्रार्थों का क्रम चलता रहा। विपक्षी हार मानते रहे। ऋषि का कोई सामना न कर सका। मेला समाप्त हुआ। ऋषि ने देखा कि मेरे प्रमाण अकाट्य रहे, कोई उत्तर न दे सका, मगर मेरे उपदेशों का कोई प्रभाव जनता पर न पड़ा। इससे चिन्तित हुये और कारण की खोज की। पूर्णयोगी तो थे ही, अन्तर आत्मा ने कहा अभी तप की और आवश्यकता है। बस प्रकाश पा गये। "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" सब कुछ त्याग दिया। रुपया पैसा, वस्त्र, पुस्तक आदि त्याग लंगोटा लगा गङ्गा का तट पकड़कर, लगे मनन, चिन्तन, व तपस्वी जीवन बिताने। माँग कर खाना छोड़ दिया, न मिला तो

गङ्गाजल पर ही सन्तोष किया । कभी-कभी कच्चे बैगन चबा-कर ही भूख को मिटाया । इस तपस्वी जीवन से स्वयं को ही अभास हुआ कि अब उचित समय आ गया है । प्रभु ने अपने प्रसाद तेज, योग, बल, विद्या, ज्ञान तर्क आदि से भरपूर कर दिया है । कैसे इसे जानें ! बस इसी परीक्षा के लिये, भारत की विद्या की प्राचीन नगरी काशी में आकर पौराणिकों के गढ़ पर चढ़ाई कर दी। युद्ध का सिद्धान्त है कि प्रथम छोटे-छोटे किले एक-एक करके जीते जाते हैं, और अन्तिम चढ़ाई मुख्य किले पर की जाती है, परन्तु ऋषि की युद्ध प्रणाली अनोखी थी । सर्व प्रथम ही मुख्य गढ़ पर टूट पड़े । न पैसा पास, न कोई साथी, न रहने का सुभीता, न पुस्तक न वस्त्र । बस अपना योग, तेज, बल, ज्ञान और ईश्वर विश्वास । एक दो विद्वानों को नहीं ललकारा पूरी काशी के विद्वानों को । उनके आनाकानी पर काशी नरेश को बाध्य किया कि वह विद्वानों को तैयार करें । विपक्षियों ने काशी नरेश के माध्यम से एक माह का अवकाश तैयारी के लिये माँगा । ऋषि ने इसे उदारता के साथ स्वीकार किया । और फिर निर्धा-रित तिथि पर एक दो नहीं काशी के ही नहीं, उस समय भारत के सबसे प्रसिद्ध २६ विद्वान् महारथियों से एक साथ ही प्यारे ऋषि ने शास्त्रार्थ किया । क्या शास्त्रार्थ एक ही विषय पर था ? और क्या वह २६ विद्वान् एक ही विषय के विद्वान् व विशेषज्ञ थे ? नहीं उनमें कोई व्याकरण का महारथी था, कोई सांख्य का, कोई वेदान्त का कोई साहित्य का कोई किसी का और कोई किसी का । उनकी चाल यह

थी कि कोई मनुष्य चाहे कितना ही विद्वान् क्यों न हो सब विद्याओं में अपूर्वता पूर्णता और विशेषता प्राप्त नहीं कर कर सकता, अतएव बारी-बारी से यह थाह लेंगे, कि ऋषि किस विद्या में कुछ कम हैं; बस उसी का महारथी उन्हें परास्त कर देगा। एक-एक महारथी अपनी-अपनी विद्या का विशेषज्ञ मैदान में उतरता था, और जब कि विषय केवल यह था कि 'वेदों में मूर्त्तिपूजा का विधान नहीं है।" वह इस विषय से दूर अपने विषय की चर्चा कर ऋषि की परीक्षा के लिये अपने विषय के गूढ़ प्रश्न रखता था। ऋषि चाहते तो उत्तर न देकर उसे मुख्य निर्धारित विषय पर प्रश्न करने को बाध्य कर सकते थे। परन्तु विद्या के अथाह आगाध सागर दयानन्द ने उसका उत्तर दे उसी के विषय का प्रश्न अपनी ओर से कर उस महारथी का मुँह बन्द कर दिया। जब अखाड़े में एक महारथी गिर गया, चारों खाने चित्त जा पड़ा तो उसका स्थान दूसरे ने ले लिया जब उसकी वही गति हुई तो फिर तीसरा चौथा यह क्रम लगातार चलता रहा। जब अपने अथाह विद्या बल का परिचय ऋषि भरपूर दे चुके तो मुख्य विषय पर शास्त्रार्थ को ललकारा और सबको बाध्य किया और कोई भी वेदों से मूर्त्तिपूजा का प्रतिपादन न कर सका। दयानन्द की विजय के गीत उस समय के समाचार पत्रों ने गाये। निष्पक्ष विद्वानों ने विजय का सेहरा ऋषि के मस्तक पर रखा और प्यारे ऋषि की धाक सारे भारत में ही नहीं विश्व में फैल गई, और आगे के १३ साल में नगर-नगर जाकर वेदों का नाद बजाया। धर्म का उपदेश किया।

सहस्रों शास्त्रार्थ किये । पचासों पुस्तकें लिखीं । वेद भाष्य किया और सारे विश्व को पावन बनाने, प्राणी मात्र को सुखी एवं श्रेष्ठ बनाने हेतु आर्यसमाज की स्थापना की । इस प्रकार ऋषि जीवन का ही नहीं विश्व के इतिहास में ऋषि का काशी शास्त्रार्थ एक अपूर्व अलौकिक घटना है । आगामी नवम्बर १९६९ में उसे पूरे १०० साल हो रहे हैं । इस अपूर्व शास्त्रार्थ की स्मृति में उसका शताब्दी समारोह मनाना ऋषि भक्तों एवं वेदों में आस्था रखने वाले सज्जनों का कर्त्तव्य हो जाता है । काशी नगरी की आर्यसमाजों ने जिले की आर्य उप प्रतिनिधि सभा के द्वारा इस स्मृति समारोह को मनाने की रूपरेखा इस प्रकार बनाई है कि वेदों के विषय में जो महर्षि की मान्यतायें थीं, उनसे अब सारे विश्व के विद्वान् अवगत् हो चुके हैं । बहुत से विद्वान् उन मान्यताओं को प्राणी मात्र के लिये लाभदायक मानकर उनका प्रचार कर संसार को सुखी बनाने में अपना योगदान कर रहे हैं । मगर कुछ ऐसे भी अभी हैं जो उन मान्यताओं को नहीं मानते और उनके विरुद्ध समय-समय पर लिखते और कहते रहते हैं, और उससे संसार में दुःख बढ़ाते जा रहे हैं । प्राणी बरबाद होते जा रहे हैं, और नाना प्रकार की बाधायें वैमनस्य फैल रहे हैं । तो इस अवसर पर पक्ष-विपक्ष विद्वानों से सप्रमाण उनके लेख वेदों के विषय में मांग रहे हैं । इसके लिये भारत के विद्वानों की सेवा में "वेदों के सत्य सन्देश हेतु आमन्त्रण" पत्र भेजे जा चुके हैं, और विदेशी विद्वानों की सेवा में अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, कनाडा, लंका, नेपाल,

जापान, रूस, वर्मा, अफगानिस्तान, पाकिस्तान आदि देशों के विद्वानों की सेवा में "Invitation for opprtiation of the true message of the vedas" भेजे जा चुके हैं। सब विद्वानों से शीघ्र से शीघ्र उनके शोध पत्र माँगे गये हैं। विपक्षी विद्वानों के आक्षेपों का उत्तर आर्य विद्वान् तैयार करेंगे और फिर पक्ष-विपक्ष के सब विषय पुस्तक के रूप में जनता को उस अवसर पर भेंट किया जायेगा। महात्मा श्री आनन्द स्वामी जी महाराज का यह भी निर्देश है कि उस अनुपम ग्रन्थ का इंगलिश अनुवाद भी तैयार कराकर विदेशी विद्वानों के लाभार्थ रखा जावे। इस प्रकार ऋषि की वेदों के प्रति मान्यताओं की दुन्दभी इस शुभ अवसर पर विश्व के कोने-कोने में पहुंचा देने की योजना है। इतना ही नहीं ऋषि के गौरव गरिमा के अनुरूप ही वह उत्सव भी इस प्रकार मनाया जावेगा कि नवम्बर १९६९ में पाँच दिन तक यह समारोह रहेगा। वेदों के दस विद्वान् आर्य जगत् के इस शुभ अवसर पर काशी में रहेंगे। विपक्ष के देश के और विदेश के जो भी विद्वान् जिज्ञासु बनकर या जैसे भी चाहें यदि भाग लेंगे जैसा कि उन्हें निमन्त्रित किया जा रहा है, और पुनः भी किया जायगा तो उनका स्वागत होगा। दिन में आर्य जगत् के पाँच विद्वान्, देश-विदेश के विपक्ष वाले विद्वानों से शंका समाधान गोष्ठी या शास्त्रार्थ करेंगे, और यह क्रम पाँचों दिन जारी रहेगा। आर्य जगत् के शेष पाँच विद्वान् काशी की शिक्षा-संस्थाओं में नित्य ही दिन में पाँच स्थानों पर वेदों का सन्देश विद्वानों, जनता को, नवयुवकों को

अपने प्रवचनों द्वारा देंगे। नगर की पाँच आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सव उसी अवसर पर रखे जावेंगे (यहाँ उत्सव केवल रात्रि में ही होते हैं) आर्य जगत् के दसों विद्वान् दो-दो करके एक समाज में जाकर वेदों का सन्देश सर्व साधारण को सुनावेंगे। इस प्रकार एक दिन में एक स्थान पर गोष्ठी, शंका समाधान और शास्त्रार्थ का क्रम चलेगा। पाँच शिक्षा संस्थाओं में वेदों पर प्रवचन होंगे और दस व्याख्यान जनता को सुनाये जा सकेंगे। इस प्रकार ७५ व्याख्यान और पाँच शास्त्रार्थों की योजना है। पाँचों दिन यज्ञ तो चलेगा ही। यदि आवश्यकता हुई तो शोभा यात्रा की भी योजना बनाकर उसे भी किया जा सकेगा। हमारी योजना है कि वेदों के प्रति जो भ्रान्ति जाने अनजाने देशी-विदेशी विद्वान् समय कुसमय फैलाते रहते हैं। इस अवसर पर सबका निवारण किया जावे। ताकि वेदों का सच्चा स्वरूप जनता के सामने आ जावे। विश्व वेदों के प्रति जागरूक हो और उससे पूर्ण लाभ उठा स्वयं सुखी बन सारे प्राणियों को सुखी बना सके।

काशी आज भी मूर्त्तिपूजा, अन्ध विश्वास, पाखंड, का उसी प्रकार गढ़ है जिस प्रकार ऋषि समय में था। यहाँ के आर्यसमाज उनके सामने छिपी-सी हैं। उनका बल पर्याप्त नहीं है, उनके साधन भी सीमित और लघु हैं। उनके कन्धे इस कदर मजबूत नहीं हैं कि वह इस महान् समारोह को ऋषि एवं प्रभु की वाणी वेदों के अनुरूप पूर्ण उच्चता गौरव एवं गरिमा के अनुकूल मना सकें। अतएव आर्यजगत् से नम्र-निवेदन है

कि यह कार्य काशी निवासी आर्यों का ही नहीं है, यह तो सारे आर्यजगत् का है। अतएव मैं प्रत्येक ऋषि-भक्त आर्य नर-नारी से नम्र-निवेदन करता हूं कि वह अपना सहयोग इस पुण्य यज्ञ में देकर ऋषि ऋण के चुकाने में भागी बनें। माननीय विद्वान् अपने शोध पत्र देकर कृतार्थ करें। धनी आर्य अपना सात्विक धन देकर हमारे बोझ को हल्का करें। माननीय आर्य नेता अपने बहुमूल्य परामर्श देकर हमारा पथ-प्रदर्शन करें। आर्यजगत् के प्रसिद्ध पूज्य संन्यासी महात्मा आनन्दस्वामी जी महाराज ने हमें बहुत उत्साहित किया है और हमें अपने पूर्ण सहयोग का आश्वासन भी दिया है। हम उनके अत्यन्त आभारी और कृतज्ञ हैं। हम आर्यजगत् के सब नर-नारियों से उनके सहयोग की याचना करते हैं। हमें विश्वास है कि वह अपना सहयोग हमें देकर कृतार्थ करेंगे।

जब वेद का अवलोकन करेंगे

जब सब स्त्री-पुरुष सर्वत्र वेद का अवलोकन करेंगे तब इन संप्रदायों की लटपट बन्द होगी तब ही कंठी द्वारा वैकुंठ मिलने का कुमार्ग बंद होगा। भाई। सोच, जो एक ही कंठी से वैकुंठ मिल जाये तो बिसातियों को कुल कण्ठियों की पेटियाँ गले में लटकाने से संसार में क्यों सुख नहीं होता? चन्दन, तिलक और छापों से यदि स्वर्ग मिल जाए तो सारे मुँह पर चन्दन लेपने से क्यों न सुख मिले। —महर्षि दयानंद

'देशोद्धारक ऋषि दयानन्द'

कपिल कणाद की यह भूमि भूली थी अपने ऋषियों को
यम नियम कहीं थे बचे नहीं सिर चढ़ा लिया था विषयों को

जाति-पांति के घेरों में सड़ती थी जाति पड़ी हुई
रूढ़ि की बाधक दीवारें थीं कदम-कदम पर खड़ी हुई

'है वेदों में इतिहास भरा' ढोंगी पंडित यूं कहते थे
जादू टोने का नाटक कर जनता को ठगते रहते थे

गैरों का दास बना भारत अपनी किस्मत को रोता था
जो चक्रवर्ती रहा कभी वह कायर बनकर सोता था

इस दुनिया के नभ मण्डल पर अधर्म के बादल छाये थे
भटक रही थी मानवता जिस वक्त दयानन्द आये थे

गुरु विरजानन्द के चरणों में योगी ने वह शिक्षा पाई
एक बार जमाना हिला दिया करामात अनूठी दिखलाई

सुप्त तर्क फिर जाग उठा पाखंड धरा का चूर हुआ
सदियों से जो तम छाया था वह पलक झपकते दूर हुआ

और भूत प्रेतों की बस्ती आनन-फानन में उजड़ गई
पोंगा पन्थी सब सहम गये मतवादों की जड़ उखड़ गई

ईश्वर विश्वासी मुनिवर ने जब देखी हुंकार लगा करके
तब रुण्डा-मुण्डा चामुण्डा सब भागे दुम दबा करके

जादू ब्रह्मचर्य शक्ति का दुनिया को फिर से दिखा दिया
भूले थे जिस वेदार्थ को दण्डी ने आकर बता दिया

खनखना उठीं जंजीरें सब योगी का धक्का खा करके
भारत का मानस चमक उठा आलोक वेद का पा करके

सब एक स्वर में बोल उठे 'भारत जग का वह कोना है
जिसकी तुलना में देखें तो समस्त विश्व एक बौना है

भारत को उसका गौरव दे फिर वहसंन्यासी चला गया
क्या घटित अचानक हुआ अरे इतिहास ठगा सा खड़ा रहा

उसको खोकर धरती रोई अम्बर ने आंसू टपकाये
लगता था युग अनाथ हुआ कि कौन रास्ता बतलाये

—ओमकुमार एम० ए० द्वय, दयानन्द कालेज, शोलापुर

वेद और परमेश्वर को कौन मानता है ?

वही ब्राह्मण समग्र वेद और परमेश्वर को जानता है, जो प्रतिष्ठा से विष के समान सदा डरता है और अपमान की इच्छा अमृत के समान किया करता है ।

९९ साल पहले की बात है—

जब महर्षि ने अंग्रेजी सीखना प्रारम्भ किया था

★ श्री गिरधारीलाल आर्य चौरीचौरा

१—आप माने या न माने, परन्तु यह इतिहास प्रसिद्ध सच्ची बात है कि मिर्जापुर में स्वामी जी ने एक बङ्गाली बनवारीलाल (बनमाली बाबू) को अंग्रेजी सीखने और मैक्समूलर कृत वेदों का अंग्रेजी अनुवाद सुनाने के लिये नौकर रक्खा था।

२—स्वामी जी का चित्त गोरक्षा के लिये बहुत आन्दोलित था और प्रायः कहा करते थे कि विलायत जाकर महारानी विक्टोरिया और वहाँ के राज परिषद् के सदस्यों को समझा कर गोवध के बन्द कराने का यत्न करेंगे। वेदों के आधुनिक भाष्यों को अशुद्ध बताते थे और महीधर तथा सायण भाष्य और मैक्समूलर का अंग्रेजी वेदानुवाद का विशेष रूप से अमान्य तथा खंडन करते थे।

३—स्वामी जी से प्रायः कलक्टर, डिप्टी कलक्टर, जिला मजिस्ट्रेट, पादरी आदि जो अंग्रेज होते थे, मिलने की बड़ी अभिलाषा रखते थे। उस समय के दुभाषिये स्वामी जी के मन्तव्यों को सही-सही अर्थों में व्यक्त करने में असमर्थ सिद्ध

होते थे। जैसा कि उनके धाराप्रवाह संस्कृत भाषणों का हिंदी अनुवाद कतिपय एत्तत्तदेशीय विद्वान् गलत अर्थ किया करते थे। इसलिये स्वामी जी ने अंग्रेजी तथा हिन्दी सीखना शुरू कर दिया था। स्वामी जी का पहला व्याख्यान २ दिसम्बर १८७४ को सेन्ट एन्ड्रूज पब्लिक लाइब्रेरी में तथा उनकी दूसरी वक्तृता ४ दिसम्बर १८७४ को गवर्नमेण्ट हाईस्कूल के अहाते में हुई थी। जहाँ पर अंग्रेजी हिमायतियों का जमघट था। उनका मनोहर भाषण सुनने के लिये संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर मोनियर विलियम्स और बम्बई के कलक्टर मि० शेफर्ड जैसे अंग्रेज भी उपस्थित होते थे।

४—स्वामी जी का विचार इंगलैण्ड जाकर प्रचार करने का भी था, और इसी उद्देश्य से उन्होंने बनमाली बाबू एक बङ्गाली से, जिसे उन्होंने मिर्जापुर में नियत करके साथ रखा था, अंग्रेजी पढ़ना प्रारम्भ किया था। १८ अक्तूबर १८७६ ई० के 'बिहार बन्धु' पटना ने लिखा था कि 'पंडित दयानन्द सरस्वती विलायत जाना चाहते हैं। इसलिये आजकल लखनऊ में अंग्रेजी पढ़ रहे हैं। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि उक्त महाशय के विलायत जाने से वहाँ के विद्वानों को बड़ा आनन्द होगा।'

५—स्वामी जी महाराज गोरक्षा के परम पक्षपाती थे। उनकी इच्छा थी कि भारत के राजाओं, महाराजाओं, रईसों और प्रजावर्ग के तीन करोड़ हस्ताक्षर कराकर गोवध बन्द करने के लिये एक मेमोरियल महारानी विक्टोरिया की सेवा

में भेजा जाय । महाराणा सज्जनसिंह तथा महाराजा जोधपुर और बूंदी ने हस्ताक्षर कर दिये थे। कहते हैं कि महाराज जयपुर के हस्ताक्षर कराने के लिये महाराणा स्वयं जयपुर गये थे । परन्तु आर्यावर्त्त (भारत) का दुर्भाग्य है कि अपने ही आदमियों द्वारा विष देकर उनकी हत्या करा देने के कारण स्वामी जी का यह पुनीत कार्य पूर्ण न हो सका । और महान् आश्चर्य एवं सन्ताप की बात है कि गोवध समस्या आज तक और अब तक भी सुलझ न सकी । यद्यपि प्रयास जारी है ।

६–एक दिन एक सज्जन ने स्वामी जी महाराज से कहा कि आप इस्लाम के विरुद्ध न कहा करें । उस समय महाराज ने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु सायंकाल को जो व्याख्यान दिया वह आदि से अन्त तक इस्लाम के सिद्धान्तों के विषय में ही दिया, जिसमें उनकी तीव्र समालोचना की । व्याख्यान का आरम्भ ही इन शब्दों से किया कि कुछ छोकरों के छोकरे मुझ से कहते हैं कि मुसलमानी मत का खंडन मत करो, परन्तु मैं सत्य को नहीं छिपा सकता । जब मुसलमानों की चलती थी तब वह हम लोगों का तलवार से खंडन करते थे । अब यह अन्धेर देखो कि मुझे उनका जिह्वा मात्र से भी खंडन करने से निषेध करते हैं । मैं ऐसा अच्छा राज्य पाकर भला किसी की पोल खोलने से कभी रुक सकता हूं ? डेरे पर आकर कहा कि यह समय ऐसा है कि कोई किसी को दूसरे मतों की पोल खोलने और अपने मत की श्रेष्ठता दिखाने से नहीं रोक सकता, अंग्रेजों के राज्य में यही बात बड़ाई की है । देखिए एक बार पंजाब के एक नगर में मैंने एक दिन ईसाई मत के

खंडन पर व्याख्यान दिया और इसका विज्ञापन पहले दे दिया था कि आज अमुक विषय पर व्याख्यान होगा। इस बात को जानकर कई देशी और विलायती पादरी व्याख्यान सुनने आये और मैंने अपनी शक्ति के अनुसार प्रबल युक्तियों से ईसाई मत का खंडन किया और बाईबिल के परस्पर विरोध दिखाये। घटनाचक्र से जेनरल रावर्टस (जंगी लाट) भी व्याख्यान भवन पर पहुंच गये थे। व्याख्यान की समाप्ति पर उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया और कहा कि आप निःसन्देह बहुत निर्भीक हैं। जब आपने हमारे सामने हमारे मत का खंडन निस्संकोच भाव से किया तो अन्य किसी का आप क्यों भय करते होंगे।

७—जोसेफ़ कूक नामक एक पादरी ने थियोसोफी और वैदिक धर्म पर अपने एक व्याख्यान में कुछ आक्षेप किये थे। इस पर १७ जनवरी सन् १८८२ को स्वामी जी महाराज ने उक्त पादरी साहब को एक पत्र अंग्रेजी में लिखया था। उस पत्र का मजमून 'ह्विच रिलीजन इज आफ डिवाइन ओरिजिन' था।

८—एक पंजाबी सज्जन ईश्वर भक्त स्वामी जी के दर्शनार्थ बम्बई पहुंचे। स्वामी जी ने सत्कारपूर्वक उन्हें अपने पास ठहराया। स्वामी जी ने एक दिन उनसे कहा कि आलसी होकर दूसरे का अन्न खाते रहना और व्यर्थ समय खोना मेरे सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। आप जब तक यहाँ रहें कम से कम इतना तो किया कीजिये कि मुझे अंग्रेजी समाचार पत्र सुना दिया कीजिये।

९—श्याम जी कृष्ण वर्मा एक अत्यन्त होनहार और कुशाग्र बुद्धि नवयुवक था और संस्कृत में उसकी बड़ी अच्छी प्रगति थी। वह अपने कालेज में सबसे अच्छा समझा जाता था। जब कभी कोई संभ्रान्त व्यक्ति कालेज का निरीक्षण करने आता था तो प्रिंसिपल श्याम जी कृष्ण वर्मा को उसके सामने अवश्य पेश करते थे, और वह अपने उत्तरों से सबको चकित कर देता था। वह किसी समृद्ध व्यक्ति का पुत्र न था। स्वामी जी उसके चातुर्य को देखकर बड़े प्रसन्न हुये। वह स्वामी जी के पास आने जाने लगा, और उन्हें अपना गुरु मानने लगा। स्वामी जी को उससे यह आशा हुई कि यदि उसे शिक्षणार्थ विलायत भेजा जाय तो उसे वैदिक धर्म के प्रचार कार्य में बड़ी सहायता मिलेगी। इसी विचार से प्रयत्न करके उसे विलायत भिजवाया।

१०—पाण्डया मोहनलाल ने एक दिन स्वामी जी महाराज को होली के इंगलिश ग्रामर पढ़ते देखा था। पाण्डया जी का कथन है कि महाराज ने अंग्रेजी अक्षर लिखने भी सीख लिये थे और वह लिफाफे पर स्थान का नाम अंग्रेजी में अपने हाथ से लिखने लगे थे।

११—स्वामी जी जब बीमार थे प्रतिदिन १८-२० तार उनके स्वास्थ्य पूछने के बारे में आते रहें। जिनका उत्तर डा० लक्ष्मनदास को ही अंग्रेजी में देना पड़ता था, और अंग्रेजी की चिट्ठियों का उत्तर भी वही लिखते थे। क्योंकि महाराज के पास उस समय डाक्टर साहब के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति अंग्रेजी का जानने वाला न था।

१२—महाराज के कर्नल अलकाट और ब्लैवैट्स्की का सम्बन्ध जिन्होंने न्यूयार्क अमेरिका में एक सभा थियोसोफिकल सोसाइटी के नाम से सन् १८७५ में स्थापित की थी। जिनके साथ महाराम जी का पत्र-व्यवहार आरम्भ हो गया था। महाराज ने कर्नल के पत्रों का हिन्दी में और अपने पत्रों का अंग्रेजी में अनुवाद करने का भार श्याम जी कृष्ण वर्मा, मूलराज और हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को सौंपा और इस प्रकार पत्र-व्यवहार होता रहा।

१३—स्वामी विवेकानन्द जी ने अद्वैतवाद वेदान्त का ही तो सन्देश अंग्रेजी में अमेरिका के शिकागो शहर में दिया था। जिसकी चर्चा संसार में आज भी होती रहती है। स्वामी दयानन्द जी महाराज दुनिया के कोने-कोने योरूप, अमेरिका, एशिया अफ्रिकादि—में वैदिक धर्म का प्रबल प्रचार व प्रसार करना चाहते थे। इसलिये वे अंग्रेजी का भी पूर्ण ज्ञान हासिल कर रहे थे। परन्तु दुष्ट लोगों ने उन्हें अपनी पूर्ण आयु भी जीने न दी। वरना वे संस्कृत, हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी में वेदज्ञान के धुवाँधार प्रचार से देश-देशान्तर द्वीप-द्वीपान्तर के लोगों को लाभान्वित कर दिखाते। दक्षिण भारत के प्रान्तों में वे अपने जीवनकाल में वैदिक धर्म एवं आर्य संस्कृति-सभ्यता का प्रचार-प्रसार क्यों नहीं कर सके, इसका भी एकमात्र कारण उनका अंग्रेजी न जानना ही था।

१३—एक दिन केशव बाबू ने स्वामी जी से कहा कि मुझे शोक है कि आप सरीखे वेद वेत्ता अंग्रेजी नहीं जानते,

नहीं तो आप इंग्लैंड जाने के लिये मेरे प्रीतिप्रद साथी होते। स्वामी जी ने तुरन्त उसका उत्तर तो दे दिया कि मैं भी ब्रह्म समाज के नेता के संस्कृत न जानने पर शोक प्रकट करता हूं। पर स्वामी जी को यह बात बहुत खल गयी थी। उन्होंने मन में अंग्रेजी सीखने का संकल्प ले लिया था . क्यों कि वे हम आर्यों की तरह संकीर्ण मनोवृत्ति एवं संकुचित दृष्टि-कोण व विचारधारा के व्यक्ति नहीं थे . तभी तो उन्होंने आर्यसमाज के नियमों में एक नियम यह भी रक्खा कि "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक सामाजिक उन्नति करना ." आर्यसमाज के मंच पर वही व्यक्ति खड़ा हो सकता है, जो सब भाषा एवं विद्याओं में पाराङ्गत हो।

वे नर-नारी धन्य हैं

"जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दर शीलस्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियम पालनयुक्त, और जो अभिमान अपवित्रता से रहित, अन्य की मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारीजनों के दुःखों के दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं, वे नर और नारी धन्य हैं ."

—महर्षि दयानन्द

शिव की "शिवरात्रि"

शिवरात्रि की शिवरात्रि थी,
शिव प्यार था मन में घना .
आस्था श्रद्धा मिलन की,
चाह में उर था सना .

दो पहर जब रात बीती,
भक्त जन सब सो रहे .
किन्तु बैठा एक प्रेमी
नेत्र उन्मीलन किये .

देखा कि जब आराध्य पर,
मूषक उछल कर चढ़ रहे .
और उनके भोग का,
उच्छिष्ट भोजन कर रहे .

वेदना मन में हुई,
उर पर हुआ आघात था
धोखा हुआ, छलना हुई
और उठ गया विश्वास था .

जागरण मन में हुआ,
और आ जगाया तात् को.
दीजिये मुझको बता,
मैं पूछता एक बात को .

क्या कोई शिव दूसरा,
जिसकी कथा मैंने सुनी .
य कथावाचक नहीं था,
बात का अपने धनी .
यह स्वयंभू और शम्भू,
विश्व-पालन कर रहा .
क्षुद्र मूषक से न रक्षित,
जो उछल कर चढ़ रहा .
सच्चे शिव को वत्स !
इस युग में हैं पा सकते नहीं .
इसलिये यह विधान है,
मानो बात जो गुरुजन कही .
इस तरह बालक समझ,
औ' झिड़ककर चुप कर दिया .
पर उचित उत्तर न पा,
वह त्वरित घर को चल दिया .
कहा मां से ला मिठाई,
क्षुधा पीड़ित कर रही .
स्नेहवश मां ने कहा,
तू बात माना था नहीं .
इस तरह शिवरात्रि का,
व्रत तोड़ था उसने दिया .
पर सत्य शिव की खोज का .
व्रत ठान था उसने लिया .

हृदय में दीपक जला,
शिवरात्रि अपने घर गई .
पर कुछ दिनों में ही,
समस्या एक नई सम्मुख हुई .

प्रिय चाचा और भगिनी की,
मृत्यु का दृश्य था .
बन्धु बान्धव सब दुखी
निज हृदय भी सन्तप्त था .

है मृत्यु यह दुःख दायिनी,
क्या इससे बच सकता नहीं .
इस पर विजय पाना मुझे
मैं इसमें फंस सकता नहीं .

था लक्ष्य उसके सामने
वह लक्ष्य-पथ पर चल दिया
माता पिता ममता तजी,
सुख-साज तजकर चल दिया .

ज्ञान - भिक्षा के लिये,
झोली लिये दर-दर फिरा .
किन्तु प्रिय के मिलन का,
कोई न पथ दर्शा सका .

प्रिय मिलन की चाह में,
क्या कष्ट वह झेला नहीं .
उच्च हिमगिरि, घोर कानन,
क्या मृत्यु से खेला नहीं .

अन्त में उस तुच्छ दीपक—
　　　　को वृहद स्नेह मिला.
　　　　　　　　पूज्य गुरु व्रजानन्द ने,
　　　　　　　　　　उसको दिया दिनकर बना.
गुरु कृपा से मूलशंकर,
　　　　मूल शंकर पा लिया.
　　　　　　　　गुरु दक्षिणा हित दान,
　　　　　　　　　　जीवन का अतुल उसने दिया.
शिवरात्रि की थी रात,
　　　　और यह पुण्य पावन प्रात था.
　　　　　　　　दया का दिनकर उगा,
　　　　　　　　　　आनन्द का प्रकाश था.
है वही शिवरात्रि लो,
　　　　निज हृदय में दीपक जला.
　　　　　　　　अमर दिनकर विभा में,
　　　　　　　　　　लो सुगम निज पथ तुम बना.
उसने गुरु ऋण मुक्त—
　　　　होने को अमर जीवन दिया.
　　　　　　　　तुम ऋषि-ऋण मुक्त होने को,
　　　　　　　　　　जलाओ निज दिया.
लो करो संकल्प सब मिल,
　　　　आज पावन पर्व है.
　　　　　　　　विश्व को आर्य बनावें,
　　　　　　　　　　यह हमारा धर्म है

—लक्ष्मी देवी विशारदा, धर्म विशारदा, सि. रत्न

लघु सत्यार्थप्रकाश

महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रंथों में निम्नलिखित वैदिक सिद्धान्तों एवं कर्त्तव्यों का प्रतिपादन किया है जिन्हें प्रत्येक आर्यसमाजी को हर समय अपने सम्मुख रखना चाहिए

—श्री पं० कृष्णदत्त आर्यवेदालंकार, फैजाबाद

१. अविद्या, स्वार्थ और पक्षपात से दूर रहना चाहिये .
२. वेदों के पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को है .
३. मूर्त्ति पूजा न करनी चाहिये .
४. वर्ण व्यवस्था जन्मानुसार नहीं अपितु गुण, कर्म और स्वभावानुसार माननी चाहिये .
५. मृतक श्राद्ध वर्जित है. जीवित पितरों का श्राद्ध करना चाहिये .
६. अन्धविश्वास और रूढ़िवाद से दूर रहना चाहिए.
७. पंच महायज्ञ प्रतिदिन करने चाहिये .
८. वेद स्वतः प्रमाण हैं अन्य ग्रन्थ परतः प्रमाण .
९. ईश्वर एक है और वह निराकार है उसी की ब्रह्म को

उपासना करनी चाहिये .

१०. ऋषि कृतग्रन्थ पढ़ने चाहिये, मनुष्य कृत नहीं .

११. ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों का मानना आवश्यक है .

१२. गौ हमारी माता है उसकी हर प्रकार से रक्षा करना हमारा धर्म है .

१३. सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिये सर्वदा उद्यत रहना चाहिए .

१४. बाल विवाह और वृद्ध विवाह वर्जित है .

१५. अछूतों का उद्धार करना चाहिये .

१६. स्वराज्य को सुराज्य बनाना चाहिये .

१७. वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है, उसका पढ़ना-पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म है .

१८. यदि हमारे साथ कोई दुष्टता करे तो हम शिष्टडा न छोड़ें .

१९. सम्प्रदाय और धर्म में भेद होता है .

२०. प्रचलित मतों में वैदिक धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है .

२१. शुद्धि द्वारा विधर्मियों ईसाई, मुसलमान आदि को वैदिक धर्मी बनाना चाहिये .

२२. पुनर्जन्म होता है .

२३. कर्मों का फल अवश्य मिलता है, इसलिये प्रतिदिन सत्कर्म करने चाहिये .

२४. श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाव वाले व्यक्ति को आर्य और दुष्ट गुण कर्म और स्वभाव वाले व्यक्ति को दस्यु कहते हैं .

२५. जीवात्मा कर्म करने में स्वाधीन है, पर फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से पराधीन है .

२६. पक्षपात छोड़कर न्याय करो .

२७. सत्य बोलो, दिन भर में प्रयत्न करो एक भी झूठ न बोलना पड़े .

२८. प्रतिदिन ऋषिकृत ग्रन्थों का स्वाध्याय करो .

२९. सदाचार के नियमों पर चल कर धर्मात्मा बनो .

३०. दुखी, रोगी, अनाथ, विधवा आदि की दीन अवस्था को देखकर उनपर दया करो . धन, वस्त्र, भोजन औषधि आदि से उनकी सहायता करो .

३१. दान सुपात्र को दो कुपात्र को नहीं .

३२. सबको मित्र की दृष्टि से देखो .

३३. धर्मात्मा सुरक्षित रहता है, पापी नष्ट हो जाता है .

३४. वह महा मूर्ख है जो समझता है कि उसके पाप ईश्वर से छिपे हुये हैं .

३५. जिस कार्य के करने में भय, शंका और लज्जा हो वही पाप है .

३६. जिस कार्य के करने में निर्भयता, उत्साह और प्रसन्नता हो वही पुण्य है .

३७. लौकिक उन्नति को अभ्युदय और परमार्थिक उन्नति को निःश्रेयस कहते हैं .

३८. विनाश काले विपरीति बुद्धिः .

३९. छल, कपट, ईर्ष्या, द्वेष और ४२० से अपना ही हृदय

दुःखित होता है तो दूसरे का क्यों न हो .

४०. सदाचारी ईश्वर के निकट है, दुराचारी उससे कोसों दूर है .

४१. निर्विकार ईश्वर को प्राप्त करने के लिये काम, क्रोध, लोभ, मोहादि का नाश करके अपने अन्तः करण को निर्विकार बनाओ .

४२. योगी वह है जो अपनी चित्त की वृत्तियों को किसी पाप की ओर झुकने नहीं देता . प्रलोभनों को लात मार देता है .

४३. वीर भोग्या वसुन्धरा, अतः वीर बन कर शत्रुओं का दलन करो .

४४. स्कूली शिक्षा प्रणाली का खंडन करो और गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मंडन करो .

४५. सह शिक्षा का विरोध करना चाहिये .

४६. पौराणिक रूढ़ियों को घरों में नष्ट करके वैदिक परम्पराओं को चलाना चाहिये .

४७. आर्य परिवारों में संस्कार विधि के अनुसार सब संस्कार यथाविधि होने चाहिये तभी उच्च चरित्र का निर्माण हो सकता है .

४८. आर्य परिवारों में प्रत्येक पर्व (त्योहार) वैदिक रीति से मनाया जाना चाहिये .

४९. माता, पिता और आचार्य के विद्वान् एवं सदाचारी होने पर ही सन्तान उत्तम बनती है .

५०–यह सारा विश्व ईश्वर के अनुशासन से खड़ा है अतः हम उन्नति चाहते हैं तो हमें अनुशासन प्रिय होना चाहिये .

५१. मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है .

५२. वह मनुष्य पशु है जो बलवान् होकर निर्बलों को सताता है .

५३. कोई पाप क्षमा नहीं होता .

५४. ईश्वर का अवतार नहीं होता .

५५. हमारी भारतीय संस्कृति और धर्म के प्रमुख ग्रंथ संस्कृत में हैं, इसलिये संस्कृत का पढ़ना आवश्यक है .

५६. हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है, इसलिये प्रत्येक कार्य हिन्दी में करना चाहिये .

५७. जिस घर में नारी का सम्मान नहीं होता वह घर नष्ट हो जाता है .

५८. सहसा विदधीत न क्रियाम्—विना विचारे ताव में आकर कोई कार्य नहीं करना चाहिये .

५९–आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः—भोजन का हमारे विचारों से घनिष्ठ सम्बन्ध है . अतः सात्त्विक भोजन करना चाहिये रजोगुणी और तमोगुणी नहीं .

६०. संसार में सुखी, दुखी, राजा, रंक अपने-अपने पुण्य और पापों का परिणाम हैं .

६१. छल और कपट उसे कहते हैं जो भीतर और बाहर और

रख दूसरे को मोह में डालकर (दुनिया साजी) और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना .

६२. क्रोधादि दोष और कटु वचन को छोड़कर शान्त और मधुर वचन ही बोलो .

६३. सज्जनों का संग और दुष्टों का त्याग करना चाहिये ।

६४. अजरामरवत् प्राणे विद्यामर्थं च चिन्तयेत्–अपने आत्मा को अजर और अमर समझकर विद्या और अर्थ का संचय करे .

६५. उत्तम साधनों से जो धन प्राप्त हो वह तो अर्थ है और जो चोरी, डाका, चोर बाजारी से प्राप्त होता है वह अनर्थ है .

६६. प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत् नरश्चरित मात्मनः किन्नु मे पशुभि स्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरिति .

६७. पाखंडी और दुराचारी मनुष्य का विश्वास न करो .

६८. मनुष्य का आत्मा उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव से भूषित होता है आभूषणों से नहीं .

६९. शिखा और यज्ञोपवीत प्रत्येक आर्य को धारण करने चाहिये .

७०. जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जिह्वा से बोलो .

७१. जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के लिये इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं, वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिये .

७२. जैसे बुद्धिमान सारथि घोड़ों को नियम से रखता है वैसे मन अन और आत्मा को खोटे कामों में खींचने वाले विषयों में विचरती हुई इंद्रियों का नियन्त्रण करो .

७३. दुराचारी पुरुष का स्वाध्याय, यज्ञ, तप सब निष्फल होता है .

७४. जिस मनुष्य के वाणी और मन शुद्ध और सुरक्षित रहते है, वही सब वेदों के फल को प्राप्त होता है .

७५. आर्ष ग्रंथों का पढ़ना ऐसा है जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाता .

७६—वेद मन्त्रों को अर्थ सहित पढ़ने से ही लाभ होता है .

७७. आर्यसमाज के स्कूलों में धार्मिक शिक्षा, संस्कृत और स्वस्थ वृत्त अवश्य पढ़ाने घाहिये .

७८. जिस घर में पति-पत्नी से सन्तुष्ट रहते है, उस घर में सुख और शान्ति रहती है । कलह से घर नष्ट हो जाता है .

७९. इस संसार में घापलूस लोग तो बहुत मिलते हैं लेकिन अप्रिय और पथ्य कहने और सुनने वाले विरले ही होते है .

८०. विद्वान् और सदाघारी उपदेशक, संन्यासी अतिथि का सत्कार अवश्य करना घाहिये .

धर्म से घृणा करने लगा . कुरीतियों के प्रभाव से समाज अति दुःखी हो रहा था . भविष्य घोर अन्धकारमय था .

ऐसे विकराल में भविष्य ज्ञाता युग निर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का प्रदुर्भाव हुआ . महर्षि के हृदय पर देश की अधोगति और महान् दुर्दशा पर चोट लगी इतना ही नहीं . जिन्होंने अपने चाचा तथा भगिनी की मृत्यु पर पिता जी से जीवन भर को विदा होने पर अश्रुपात नहीं किया . उन्होंने देश की दुर्दशा पर अश्रुपात भी किया . और वैदिक धर्म के पुनरुद्धारार्थ दृढ़ प्रतिज्ञा की . और बड़े साहस तथा धैर्य के साथ घोर आपत्तियों और अपमानों का समयानुसार स्वागत करते हुये वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की . नाना प्रकार की कुरीतियाँ दूर करके समाज का मुख पौराणिकता की ओर से हटा कर वैदिक धर्म की ओर फेर दिया . वैदिक धर्म में मनुष्य मात्र को दीक्षित करने योग्यतानुसार ही अधिकार देने का नियम वेदों के आधार पर सिद्ध कर समाज को सुव्यवस्थित और संगठित किया . वेदों का अनुपम आदर्श स्थापित किया .

'राष्ट्रोन्नति' ऐसे दूरदर्शी महान् नेता ऋषि दयाननन्द ने राष्ट्र धर्म द्वारा राष्ट्र उन्नति के लिये भारत को विशाल क्षेत्र बनाने का प्रयास भी किया. उनकी इच्छा थी अपने देश में अपना राजा होना उचित है . इसीलिये उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश षष्टम समुल्लास में लिखा कि जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि होता है . तथा अपने पराये का पक्ष-

पातका शून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा दया और न्याय के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायी नहीं हो सकता .

ऐसे स्वराज्य के साथ वह सुराज्य भी चाहते थे। इस सिद्धान्त का उन्होंने मनसा वाचा ही जन्म नहीं दिया वरन् राजस्थान में घूम-घूम कर कई राजाओं को राजधर्म का उपदेश दिया। मानव धर्म शास्त्र द्वारा राजा-प्रजा धर्म सिखाया। राजाओं ने भी महर्षि की आज्ञाओं को बड़ी श्रद्धा-भक्ति से स्वीकार किया, और उचित मान दिया। उनकी आज्ञानुसार अपनी कार्य प्रणाली में सुधार किया। स्वामी जी राजाओं का एकीकरण करना चाहते थे। राष्ट्र को ऊँचा उठाकर देश में महान् क्रांतिकारी युग लाना चाहते थे, राष्ट्र हित में उनका लक्ष्य महान् था। परन्तु प्रभु की इच्छा उनका अमर बलिदान भी राष्ट्र हित में ही हुआ।

उन्होंने बुद्धिवाद का प्रचार करके मानसिक संकीर्णता दासता छुड़ाई भारतवासियों को मानसिक, वाचिक, स्वतन्त्रता दी। सत्य और अहिंसा का उन्होंने पाठ ही नहीं पढ़ाया वरन् अपने जीवन में चरितार्थ करके वैदिक आदर्श स्थापित किया। उनका लक्ष्य किसी देश-विदेश या जाति के लिये संकीर्ण नहीं था। वरन् 'वसुधैव कुटुम्बकम्' विश्वशान्ति विश्वप्रेम उनका लक्ष्य था। वे किसी को अछूत नहीं मानते थे, उनकी शिक्षा-दीक्षा का द्वार मनुष्य मात्र के लिये खुला था।

स्त्री जाति को अनुचित दासता से छुड़ाकर सुशिक्षित और निर्भीक बनाकर देश में मात-शक्ति का मस्तक ऊँचा किया। सारे देश में तप और त्याग की भावना को भर के देशवासियों को देश व धर्म पर बलिदान होने का पात्र बनाया। महर्षि के सत्य, अहिंसा विश्व प्रेम को लेकर ही महात्मा गाँधी ने देश को स्वतन्त्र कराया। आज हम सब भारतवासी महर्षि के कृपा के पात्र हैं, जो समानाधिकार प्राप्त करके नव-निर्माण के उच्च मञ्च पर खड़े हैं, संसार के राष्ट्रों से हमारा समान अधिकार ही नहीं वरन् मस्तिष्क ऊँचा है। महर्षि ने प्रजातन्त्र का भी मार्ग सर्व प्रथम दिखाया, परन्तु उनका प्रजातन्त्र शास्त्र और नीति से बँधा हुआ है। उनके राज्य शासन का नियम केवल गणतन्त्र ही नहीं वरन् 'गुणतन्त्र' के साथ गणतन्त्र का है, अर्थात् उनके प्रजातन्त्र में सदाचारी योग्य गुणवान व्यक्ति ही निर्वाचित होने के लिये खड़ा हो सकता है, और मत देने का अधिकार भी सबको होते हुये मत का मूल्य आचार की दृष्टि से पृथक्-पृथक् होना चाहिये . उनके शास्त्रोक्त विधान में श्रेष्ठ सदाचारी न्याय प्रिय विद्वान् की सम्मति सैकड़ों मूर्खों से अधिक मूल्यवान है . इस प्रकार के प्रजातन्त्र से संसार में विश्वशान्ति का लक्ष्य पूरा हो सकता है . तथा वेदों के स्वाध्याय करने तदनुकूल आचरण बनाने से और समाज के अग्रगण्य नेता सच्चे वैदिक सिद्धान्त सम्पन्न त्यागी तपस्वी बनाये जाने से वेदों से उद्धार होने तथा 'कृणवन्तो विश्वमार्यम्' का स्वप्न साकार होने में सफलता प्राप्त होगी . यतोधर्मस्ततो जयः ..

'ईश्वरस्य प्राप्तौ हिरण्यम यस्य लीला'

[प्रश्नोत्तर विधिना]

प्र०–मुने ! ब्रह्मसत्यं परन्त्वत्र कस्मा,
न्न तद्गोचरं तत्र लोको न लग्नः .
कथं तत्त्वबोधो भवेत् तद् रहस्यं,
वदेत्याह शिष्यो गुरुं प्राप्य नम्रः . १ .

उ०–ब्रह्मेत्र सत्यमिति सत्यमनु क्षणंतत्,
सर्वत्र चाप्यनुकणं ननु दृष्टि मेति .
माया हि सा भगवती भवभावर्वात्री,
सत्यं पिधाय भुवि महियति स्वभावान् . २ .

मन्त्र–हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्.
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये . ३ .

ज्योतिर्मयी जवनिका सकलानि सत्या,
न्याच्छाद्य सुस्थिति मतीह विराजतेसा .
हेतोरतो विषय वासनया वृत्तस्य,
चेतो जनस्य न यथा तथता मुपैति . ४ .

तत्वानि यानि जनगोचरतां गतानि,
चेतो तराणि विषयेषु हितानि तानि .
लोके हिरण्मय पुटपिधान पात्र–
भूतानि तैश्च पिहितं ननु सत्पतत्त्वम् . ५ .

भृङ्गः सुगन्धे सुरसेच मीनः,
रपे पतङ्गः सुर वे कुरङ्गः .
स्पर्शेच मतङ्गज एतिनाशं,
नाशे हिरण्यं हि सदैव हेतुः . ६ .

ये ये हिरण्यस्य वशं प्रयाता,
स्तेते ते महद् दुख मुपेचि वन्तः .
स काश्यपो ज्ञानिक-कौशिकीवा,
ज्ञानी बली वापि भवेद् दशास्यः . ७ .

माया जगत्यांहि मिह सत्यवत्यां–
समं समाच्छाद्य विराजते सा .
तथा यथा लुप्त भिवास्ति सत्यं–
सत्योऽत्र धर्मो न च दृश्यते सः . ८ .

जिज्ञासु-वर्य ! निखिलं खलु सत्यतत्त्वं,
विज्ञातुमत्र परमात्म कृपा समेचा .
ताँ चापि विस्तृत कृपाम्भधि गन्तु कामैः
स्तुत्यर्थनार्चन गुणाः समुपासितव्या . ९ .

–गङ्गाधर शास्त्री व्याकरणाचार्य
महोपदेशकः आर्य प्रतिनिधि सभा बिहारस्य

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षताम्

—श्री पं० विभुमित्र शास्त्री साहित्य-व्याकरणाचार्य
गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथधाम

मनुष्य सर्व श्रेष्ठ प्राणी है। संसार के गूढ़ तत्त्वों का बोध (ज्ञान) इसे ही हो सकता है, या कराया जा सकता है। ईश्वर ने इसे ही अनादि ज्ञान—वेद—का अधिकारी बनाया। शारीरिक निर्माण प्रतिक्रिया की दृष्टि से भी इसमें कई विशेषतायें स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। यह चाहे तो अपने मनोमय कोष को विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों में विकास कर चरम सुख की उपलब्धि करले—जब कि अन्य प्राणियों के लिये यह सर्वथा असम्भव है। सोचने समझने की स्वाभाविक शक्ति भी इसे सर्वाधिक रूप में प्रप्त है। यह विश्व की विचित्रताओं और समय-समय पर होने वाली विविध घटनाओं के विषय में सोच सकता है—सोचता है। न्यूटन ने फल को गिरते हुए देख कर वाष्य शक्ति का पता लगाया, ऋषि दयानन्द ने जड़ प्रतिमा पर चूहे को निर्भयता पूर्वक घूमते देख कर जड़ में जड़त्व का दर्शन किया। किन्तु मानवगत यह विशेषता सब में समान रूप से विद्यमान नहीं है। कितने मनुष्य ऐसे हैं, जिन्हें सुलझी हुई सामान्य बात भी समझाई जाय तो वे उसे ग्रहण करने में सर्वथा असमर्थ हो जाते हैं।

वेद में इन दोनों ही प्रकार के मनुष्यों के बारे में बड़ा ही सुन्दर चित्रण है:—

उतत्वः पश्यन्न ददर्शवाचमुतत्वः श्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम् ।
उतोत्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ।।

अर्थात् एक तो वे हैं, जो देखते हुये भी नहीं देखते, तथा, वाणी को सुनते हुये भी नहीं सुनते, और दूसरे सौभाग्यशाली वे हैं, जिनके लिये पद पद-पदार्थ स्वयं अनावृत रूप में प्रत्यक्ष पड़े रहते हैं ।

वस्तुतः सोचने समझने की उक्त शक्ति (प्रतिभा) का सम्बन्ध जन्मान्तरीय संस्कार विशेषों से है । जिन्होंने जितना ही अपने आत्म-गुणों का विकास किया; उन्हें उतनी ही मात्रा में प्रतिभा विशेष की प्राति हुई । किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रतिभा-विशेष की न्यूनाधिक प्राप्ति और उपभोग से ही मनुष्य की हीनता और महत्ता का मूल्याङ्कन हुआ करता है । "इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख-दुख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गानि"—के अनुसार ज्ञन (बोध) आत्मा के स्वाभाविक गुणों में एक गुण हैं; किन्तु इस गुण के साथ ही साथ स्वाभाविक रूप से इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुख भी लगा ही रहता है । अतः आत्मा के इन स्वाभाविक गुणों की अपेक्षा केवल मात्र ज्ञान गुण का विकास करना साधारण बात नहीं है । इसके लिये मनुष्य को योगी होना पड़ता है । चित्त वृत्तियों को रोक कर एक निश्चित लक्ष्य की ओर उन्मुख करना पड़ता है—योगश्चित्त वृत्ति निरोधः । चित्त वृत्तियों को एक लक्ष्य की ओर

मोड़ना अभ्यास और वैराग्य की भावना पर ही निर्भर करता है—विराम प्रत्ययाभ्यास पूर्वः संस्कार शेषोन्यः। अतः यह कार्य बहुत ही कठिन है। किन्तु कठिनाइयों के डर से मनुष्य, ज्ञान-विकास की ओर से विमुख हो जाय तो इसे अपनी महत्ता और सत्ता से भी विमुख होना पड़ जायेगा। आत्मा कें इच्छादि गुणों का दर्शन तो हम पशुओं में भी अधिकाधिक रूप में प्राप्त कर सकते हैं, यदि उन्हीं सामान्य गुणों का विकास मनुष्य ने भी किया तो उसकी मनन शीलता की विशेषता क्या हुई ? साथ ही साथ यह भी विचारणीय है कि इच्छा द्वेषादि गुणों का विकास कर मनुष्य अपने लक्ष्य भूत परम सुख और सन्तोष को प्राप्त कर सकता है या नहीं ? ऋषियों ते इच्छा के विषय में तो स्पष्ट कहा है कि उसकी पूर्त्ति नहीं हो सकती। हम इच्छाओं की पूर्त्ति ज्यों-ज्यों करना चाहेंगे, त्यों-त्यों वह घृत सिंचित अग्नि की तरह बढ़ती चली जायगी:—

न जातु कामः कामानामुप भोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभि वर्धते॥

इसी प्रकार द्वेष की वृद्धि से द्वेष का शमन नहीं हो सकता। इसीलिये वेद ने ज्ञानाग्नि को ही उद्दीप्त करने तथा उसी के द्वारा अपनी इष्टा पूर्त्ति को भी प्रति जागरित करने की बात कही है—उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्ठा पूर्त्ते स सृजेथामयञ्च।

मनुष्य दुखों से छूटने के लिये हजार-हजार पशुवत् प्रयत्न

करें, किंतु उसका प्रयत्न यदि ज्ञान (बोध) रहित होता है तो उसका फल श्रेयस्कर नहीं हो सकता—ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः। इसीलिये गीता में भी जहाँ कर्म करने की बात कही गई है, वहीं बुद्धियुक्त (ज्ञान युक्त) कर्म के द्वारा ही निर्लिप्त भाव की प्राप्ति बताई गई है। गीता के अनुसार ज्ञानयुक्त कर्म में कुशलता का लाना ही योग है—

बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।

किन्तु सुखान्वेषण के क्रम में आज का मनुष्य ज्ञान और कर्म का सुन्दर समन्वय कहां कर पा रहा है ? आज का ज्ञान तो विनाश का साधन बना लिया गया है; वस्तुतः ज्ञान तो अमृतत्व (परम सुख) का साधन है—विद्ययामृतमश्नुते। जिस विद्या से अपना तथा विश्व का संहार हो उसे विज्ञान क्या, ज्ञान की संज्ञा देना भी अनुचित है। कहते हैं आज विश्व के दो बड़े देशों के पास ऐसी-ऐसी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हैं, जिन के द्वारा सारी पृथ्वी को १५ मिनट के अन्दर तबाह कर दिया जा सकता है। लोगों की धारणा है कि भावी इलक्ट्रोनिक युद्ध में जब पृथ्वी की तबाही होने लगेगी तब लोग दूसरे-दूसरे ग्रहों में जाकर अपना बचाव करेंगे। किन्तु सोचना है कि विज्ञान की उपलब्धियों ने यदि पृथ्वी को भयातुर कर दिया है तो क्या वे इन्हीं क्रोध द्रोहादि की भावनाओं के साथ अन्यत्र जाकर सुरक्षित रह सकेंगे ? क्या पर पक्ष वाले की पहुंच वहां तक न होगी ? अथवा उस दुनिया में जाने से ईर्ष्या द्वेष

की भावनाएं स्वतः समाप्त हो जायेगी ? यदि दोनों ही चीजें वहां भी सम्भव है तब तो लोग वहां भी जाकर उन्हीं आपदाओं को प्राप्त करेंगे ।

अतः उपर्युक्त पलायनवाद की अपेक्षा उचित तो यही है कि हम यहीं रहकर अपनी आन्तरिक मनोवृत्तियों को शुद्ध करें मन से ईर्ष्या, घृणा, द्वेषादि की कलुषता को निकाल दें, वसुधैव कुटुम्बकम्—के महत्तम आदर्श को अपना लें—यही सर्वो-उपाय है । इसीलिये एक प्रसिद्ध दार्शनिक का कथन है कि सुख की खोज अन्यत्र न कर अपने मन में ही करना चाहिये—

मन एव मनुष्याणाँ कारणं बन्ध मोथयोः ।

अपोलो-८ के यात्रियों ने चन्द्रमा की कुरूपता और बीहड़पना को बहुत नजदीक से देखा है । हमारे ऋषियों ने अन्यान्य ग्रह-उपग्रहों की अपेक्षा इस पृथ्वी को ही सब ढंग सुन्दर मानकर इसकी प्रशंसा की थी । उन्होंने भगवान से प्रर्थना की थी कि हे भगवन्, जिस पृथ्वी की चार दिशा-उपदिशाएं हैं, जिस पृथ्वी पर सब प्रकार के अन्न और भोग्म वस्तुएं उपलब्ध हैं, वह पृथ्वी हमें गौ, अन्न और विविध औषधियों से पुष्ट करे—

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या विभति वहुधा प्राण देजत् सानोभूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥

उन ऋषियों के लिये यह पृथ्वी माता के समान थी । इस पृथ्वी पर सौ वर्ष से भी अधिक जीने की कामनाएं थी । यह

पृथ्वी जन्म जन्मान्तर के लिये भी आकर्षण का केन्द्र बनी थी। आखिर वे भी इस पृथ्वी पर बसने में शंकित क्यों नहीं हुये ? उत्तर स्पष्ट है कि जो व्यक्ति शंकाओं के मूल को ही बाधित करदे, उसे शंका भी किस ओर से होगी ?—वितर्क बा धने प्रतिपक्ष भावनम् । वे स्वं हिंसा, घृणा, द्वेष से परे सात्त्विकता के उपासक थे। उनकी प्रार्थना और कामना थी—सबको मित्र भाव से देखने की—मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । भला जो सबको मित्र की भावना से ही अपनाना चाहे, उसका शत्रु भी कौन होगा ?

अतः आज की सारी विभीषिकाओं को मिटाने का एक ही उपाय है—आध्यात्मिकता को जगाना, विज्ञान को आत्म ज्ञान से सम्बद्ध करना। यही आज का महान् उद्बोधन होगा। यदि हमने आज के विज्ञान की तुलना आध्यात्मिकता को उन्नत कर तत्सम भी न किया तो हमारे सारी सुख-सुविधाओं की प्राप्त सामग्री एक चक्के के रथ की तरह व्यर्थ सिद्ध होगी।

ऋषि दयानन्द ने इन्हीं भावनाओं से अपने वेद भाष्यों में भौतिकता के साथ ही साथ आध्यात्मिकता को सर्वत्र जगाया है ऋषि ने अपने बाल्यकाल में जिस जड़ता की पूजा पर अविश्वास प्रकट किया था, उसी जड़त्ववाद की स्थापना, केवल मात्र भौतिकता की भावनाओं से नहीं कर सकते थे। वे विद्या और अविद्या के गूढ़ रहस्यों को समझते थे। अविद्या के द्वारा भौतिकता प्रधान कार्यों का सम्पादन कर विद्या के द्वारा मोक्ष तक पहुंचने का महत्तम लक्ष्य उनके सामने था—

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभय ँ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।

अतः आज (ऋषिबोध पर्व के अवसर पर) यदि हम ऋषिभक्त गण प्रबुद्ध हैं, तो हमें भी उसी आध्यात्मिकता की ओर बढ़ना चाहिये । वेद के आदेशों को मानकर यज्ञीय कर्मों का बोध (ज्ञान) करना चाहिये और तदनुरूप ही आयुः प्राण पशु, कीर्ति और प्रजाओं को बढ़ाना चाहिये—

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ।।

अपने आत्मा को उद्‌बुद्ध कर सात्विकता को जगाना ही जागृति है-बोध है-जागर्ति को वा सद् सद्‌विवेकी. ऐसे ही जगने वाले को सख्य भाव से ऋचाएं सिद्धियाँ देती हैं, सोम—आमृतत्त्व—प्राप्त होता है—

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सोमानियन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।।

संयमी लोग इसी प्रकार जागकर तत्त्वान्वेषण करते हैं—जबकि भौतिकी (भौतिकता मात्र के उपासक) लोग केवल 'खाओ-पीओ मौज करो' में ही अपना बहु मूल्य जीवन वर्बाद कर देते हैं—

या निशा सर्व भूतानाँ तस्यां जार्गति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।

अतः आशा है, ऋषिके भक्त गण ! आज इस अवसर

शासन और अनुशासन का समन्वय
बोध रात्रि का सन्देश

—श्री पूर्णचन्द्र एडवोकेट,
पूर्व प्रधान—सार्वदेशिक आर्य प्र० सभा

महर्षि ने रात भर जागकर संसार की जगाया।

स्वराज्य मिल जाने पर शासन के लिये संघर्ष है। निर्वाचन उसका व्यावहारिक रूप है। शासन के लिये अनुशासन अनिवार्य्य है।

शासन करने के लिये अनुशासन की भावना अति आवश्यक है, जो स्वयम् आज्ञा पालन करना जानता है वही आशा कर सकता है कि दूसरे उसकी आज्ञा का पालन करेंगे और

— — — —

पर अवश्य ही जाग रहे होंगे। ऋषि का बोध उन्हें भी उद्बोधित कर रहा होगा। ऋषि भक्तों का बोध संसार के बोध का कारण बनेगा। वेद के शब्दों में यह उद्बोध आपकी—सबकों—रक्षा का कारण बने। इन्हीं भावनाओं के साथ लेख को यहीं समाप्त करता हूं—

बोधश्च त्वा प्रती बोधश्च रक्षतामितिशम्

तभी वह आशा कर सकता है कि दूसरों के शासन से मुक्त रह सकेगा। अनुशासन आन्तरिक भावना से सम्बन्धित है। यदि शासन करने वाले और शासित अर्थात् राजा और प्रजा दोनों किसी एक महान् शक्ति के शासन में रहने का स्वभाव बना लें तो उनमें आपस में सहयोग होगा, और देश में शाँति और सुख का साम्राज्य होगा। आज भारत को स्वतन्त्र हुये लगभग २१ वर्ष हो चुके हैं। पूर्ण स्वतन्त्रता के नाम पर एक अराजकता-सी फैली हुई है। महर्षि के सन्देश को समस्त संसार में पहुंचाना है और व्यक्तियों के चरित्र को संगठित करना है, जिससे स्वराज्य का रूप धारण कर सकें। वेद के अनुसार यह बात ध्यान में रहे कि जय-अप अनुसुराज्यम् अर्थात् अपनी इन्द्रियों की जीत और स्वराज्य का अधिकारी बन यह सन्देश व्यक्ति निर्माण और नैतिक उत्थान के लिये अचूक औषधि है। गायत्री मन्त्र जो गुरु-मन्त्र और महामन्त्र है, अनुशासन का विधान है। इसका प्रचार और विस्तार घर-घर होना चाहिये। महर्षि दयानन्द, महात्मा गाँधी, और रवीन्द्रनाथ टैगोर की यही धारणा थी, जिसका उल्लेख मैंने अपनी पुस्त "अनुशासन के विधान" में किया है। गायत्री मन्त्र को अर्थ सहित सब संस्थाओं और कार्यालयों में लगा देना चाहिये। इसके लिये पूरा यत्न होना चाहिये।

आस्तिक जादूगर-
स्वामी दयानन्द सरस्वती

—श्री भक्तराम (अफ्रीका वाले) दिल्ली

देश प्रसिद्ध वक्ता कुंवर सुखलाल जी 'आर्यपथिक' ने आर्य समाज पुलबङ्गश, दिल्ली के वार्षिकोत्सव नवम्बर १९६२ के अवसर पर एक लेखक का उल्लेख किया था जिसने अपनी रचना में आर्यसमाज को प्लेग से उपमा दी है; उसने अपने पक्ष की पुष्टि में दो प्रमाण दिये हैं; पहला यह कि प्लेग का रोग मनुष्यों को चूहों के रोगाणुओं द्वारा लगती है, आर्य समाज भी महर्षि दयानन्द को चूहे द्वारा ही शिवपिंडी पर चढ़ाया हुआ पूजा का उपहार खाने से प्राप्त ज्ञान का परिणाम है। दूसरा यह कि देश में प्लेग सर्वप्रथम बम्बई में फैली थी और आर्यसमाज की स्थापना भी पहिलेपहल बम्बई में हुई थी।

वस्तुतः आर्यसमाज प्लेग का रोग है। प्लेग रोग से बचाव के तीन उपाय आवश्यक हैं (१) टीके लगवाये जावें (२) चूहों का नाश किया जावे (३) शुद्धि (सफ़ाई)। देश तथा जाति की जांघ, गर्दन व बगल में निकली हुई गिलटी, अविद्या रूपी गिलटी से उत्पन्न हुए पुराने बन्धन, ढोंग रूपी अकड़ाहट, सिरदर्द और तेज बुखार के टीके लगाये गये। अज्ञान

रूपी चूहों के नाश के लिये भरसक प्रयत्न किया गया और सफाई की यह अवस्था है कि मतवादी अपने सिद्धान्तों को वेद के अनुसार बनाने की चिन्ता में हैं . धर्म पुस्तकों के अर्थों को बदल रहे हैं . अस्तु ! जब तक उपाय सफल नहीं होते तब तक आर्यसमाज रूपी प्लेग रहेगी ही .

महापुरुषों का जन्म तत्कालीन परिस्थितियों के कारण हुआ करता है . महर्षि दयानन्द के जन्म का कारण भी उस समय क अवस्था ही थी . वैदिक संस्कृति का सर्वथा लोप होने को ही था । एक एक साधारण गाथ. से लेकर वेद तक सभी ग्रंथ एक ही गठरी में बांधे जाते थे, मूंगा और मोती एक ही भाव बिकते थे . 'सब धान २२ पंसेरी' वाली लोकोक्ति अक्षरशः चरितार्थ हो रही थी . धार्मिक और सामाजिक रीति-नीति के अन्तर को देखकर कोई भी यह समझने में असमर्थ था कि इस आर्य भूमि पर कभी वैदिक धर्म का प्रचार था . ऐसी भयंकर अवस्था को बदल डालने के लिये ही दिव्य देव दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ । उन्होंने अपने जीवनकाल में भाषणों, सत्संगों, शंका-समाधानों, शास्त्रार्थों, लेखों और पुस्तकों द्वारा पाखंडों का नाश, वेदों की रक्षा और धर्म का संशोधन किया .

वेद प्रचार हित ऋषि ने जो-जो कष्ट सहे और जो-जो लांछन उनपर लगाये गये, उनका ध्यान धरते ही शरीर रोमांचित हो उठता है . कोई उन्हें नास्तिक कहता कोई उन्हें पादरियों का एजेण्ट बताता, किसी ने धूर्त्त, किसी ने गपाष्टक, किसी ने उन्हें ईसाइयों का वेतन भोगी कहा . किसी-किसी

ने तो यहाँ तक विरोध में कमर कसी कि उनका टका न छुड़ाने वाली अच्छी बात में भी मीन मेख लगायी . एक बार ऐसा कोलाहल मचाया गया कि स्वामी दयानन्द जी गौ को 'गौ माता' नहीं कहते . धर्म की दृष्टि छोड़ कर स्वार्थ से उसकी रक्षा बताते हैं . और यह उनकी नास्तिकता है .

जहाँ महर्षि दयानन्द के विरोधी थे वहाँ प्रशंसक भी (मतभेद रखते हुये) कम नहीं थे . केवल एक पादरी राविन्सन का प्रमाण-पत्र नीचे उद्धृत करता हूं . इस पादरी और पादरी शूलग्रेड से स्वामी जी का शास्त्रार्थ भी हुआ था, और इन दोनों पादरियों के प्रश्नों का पाण्डित्य पूर्ण उत्तर देकर शान्त कर दिया था . जब राविन्सन साहिब ने स्वामी जी से एक प्रश्न किया और उसका उत्तर पाकर इतने प्रसन्न हुये थे कि यह प्रमाण-पत्र लिख दिया कि 'स्वामी जी वेदों के एक प्रसिद्ध पण्डित हैं और हमने सारी उमर (आयु) ऐसा विचित्र विद्वान् नही देखा . ऐसे मनुष्य संसार में विरले होते हैं . जो इनसे मिलेगा बहुत लाभ उठायेगा । जो इनसे मिलें बहुत सम्मान करें ।' क्यों न हो—
'जादू है वह जो सिर चढ़ बोले।'

महर्षि के अनुयायियों को भी कम दुःख नहीं झेलने पड़े । आर्य समाज की स्थापना के होते ही आर्य समाजियों पर विपत्ति के बादल छा जाते थे . आर्यों पर बरादरी का यह द्वेष रहता था कि जो आर्य समाज में जाता था उसको बिना कुछ कहे सुने बरादरी से पृथक् कर दिया जाता था . सब समाजी बरादरी से च्युत किये गये । सम्बन्धियों ने खाना

पीना छोड़ दिया। ब्राह्मण पाचकों ने परोसना त्याग दिया। कहार (धीमर) और नाई बन्द कर दिये जाते। एक आर्य लेखक ने भाटिया गुरु भक्ति पर पुस्तक लिखी तो उस पर एक सेठ ने केस कर दिया और प्रतिज्ञा की थी कि चाहे बम्बई की कोठी बेचनी पड़े पर वह आर्य लेखक को अवश्य कैद करायेगा। एक ब्राह्मण देवता ने सनातन धर्म की स्थापना के दिन यज्ञ के आगे संकल्प किया कि आर्य समाज को ताला लगवा देगा। पं० मुरारीलाल जी शर्मा शास्त्रार्थ महारथी के पंचायत के मूर्ति की बाबत पूछने पर केवल इतना कहने से कि "यह पत्थर की बनी है' जाति से च्युत कर कुएं से पानी तक भरने से रोक दिया गया था। रोपड़ के महाशय सोभनाथ जी की बीमार माता के प्राण चले गये थे (डाक्टर के आदेशानुसार कुएं के पानी के न मिलने से) क्योंकि सोमनाथ जी का भी आर्यसमाजी होने के कारण बिरादरी की ओर से कुएं का पानी बन्द था। निदान विरोधी आर्य समाजियों को दुखी करने में कोई कसर नहीं छोड़ते थे, परन्तु परमात्मा आर्यसमाज की रक्षा करते ही रहे।

आर्यसमाजियों को मनुष्य नहीं कुछ और समझा जाता था। कुंवर सुखलाल जी ने अप्रैल सन् ५४ में आर्यसमाज कटड़ा सफेद अमृतसर के उत्सव पर अपने भाषण में बताया था, एक समाज के उत्सव की बैठक की समाप्ति पर वह कुछ प्रचारकों के साथ डेरे को जा रहे थे, जब उनके कानों में शब्द पड़े 'मां! वे देखो आरिये जा रहे हैं।' सब उपदेशक यह शब्द सुनकर ठहर गये। इतने में लड़के की मां घर के

वाहर निकली। उन प्रचारकों को देखकर कहने लगी—'काका!' ये तो आदमी हैं।' उस माता ने न जाने आर्यों को क्या समझ रक्खा होगा ?

और तो और महर्षि दयानन्द को लोगों ने क्या कुछ समझ रक्खा था, इसका दिग्दर्शन पाठक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन चरित्र 'कल्याण मार्ग का पथिक' में से करें, जो नीचे उद्धृत किया जाता हैं–

'काशी में प्रसिद्ध हुआ कि एक वेद शास्त्र का ज्ञाता बड़ा नास्तिक आया है जिसके दोनों ओर दिन में मशालें जलती हैं। जो भी पण्डित उससे शास्त्रार्थ करने जाता है। उनके तेज से दब जाता है। मुझे भलीप्रकार स्मरण है कि माता जी उन दिनों हमें बाहर नहीं जाने देती थीं–इस भय से कि कहीं हम दोनों भाई जादूगर के फंदे में न फंस जायें। पिता जी ने पीछे बतलाया था कि वह प्रसिद्ध अवधूत दयानन्द ही थे। माता जी को क्या मालूम था कि उनके पीछे उनका प्यारा बच्चा उसी जादूगर के उपदेश से प्रभावित होकर उसका अनुयायी बन जायेगा।'

वह अनुयायी केवल अनुयायी ही न बना अपितु उस जादूगर के अधूरे काम को पूरा करने के लिए उसने सर्वस्व लुटा दिया। दूसरे (पं० गुरुदत्त जा) २६ वर्ष की आयु में ही भरसक परिश्रम और निरन्तर लेखन कार्य के कारण क्षय रोग के शिकार होकर अकाल मृत्यु का ग्रास हो गये। तीसरे (पं० लेखराम जी) के विरोधियों के कैम्प में भगदड़ पड़ गई और अन्ततोगत्वा और उन्हीं हाथों अमर बलिदान को

प्राप्त हुये। चौथे (स्वामी दर्शनानन्द जी) अपनी पैतृक सम्पत्ति तक वेद प्रचारार्थ लगा दी और द्वार-द्वार पर भिखारी बन कर अपने प्रण को निभाया। पांचवें (महात्मा हँसराज जी) एक कौड़ी लिये बिना आयु भर वैदिक धर्म का प्रचार कर जादूगर दयानन्द के स्वप्न को साकार करने में प्रयत्नशील रहे।

आओ आर्य भाइयो! हम भी अपने सद्गत नेताओं की भाँति उस ऋषि के मिशन की पूर्त्ति में कोई कसर उठा न रक्खें। तभी हम उनके सच्चे अनुयायी बन सकेंगे। ★

महर्षि दयानन्द की वैज्ञानिक सचेतनता

—श्री मुकुलचन्द पाण्डेय, एम० एस० सी०, लेक्चरर
वनस्पति विज्ञान विभाग, शिया डिग्री कालेज लखनऊ—७

वैज्ञानिक चरमोत्कर्ष के इस युग में मानवमात्र के दायित्वों तथा सत्या चरणों के प्रति सतत जागरूकता का सम्यक बोध महर्षि दयानन्द जी ने अपने जीवनकाल में ही करा दिया था। साम्राज्य लिप्सा में ओतप्रोत मानवता की मेरुदण्ड आज दुर्बल प्रतीत हो रही है, इसके लिये हमें अपूर्व जागृति की महती अपेक्षा है। एतद्देशीय संकीर्णता में ही सीमित न रह कर 'कृण्णवन्तो विश्वमार्यम्' के अक्षुण्ण सन्देश का विगुल सम्पूर्ण विश्व में पुनः बजाकर प्रत्येक नर-नारी में चेतना का नया राग कूट-कूट कर भर देना नितान्त आवश्यक है। धर्म निरपेक्षता का छद्म सन्देश हम भारतवासियों को वेदादि सत्य शास्त्रों से विमुख कर भौतिकवादिता के निराशान्धकार, निष्ठुरता लोभ, स्वार्थान्धता की ओर अभिमुख करना जान पड़ता है। हम स्वत्व व प्राचीन गौरव का विस्मृत कर अज्ञान की दिशा में अग्रसर हैं। यद्यपि शिक्षा का व्यापक प्रसार देश-विदेश में हो चला है तथापि तत्य कर्म, सत्य मानदण्डों व परोपकार के नित्य धर्म से हम परामुख होते दृष्टि गत हो रहे हैं। इसका मूलकारण हमारा अमन्तव्य

को मन्तव्यता के मिथ्या परिवेश में देखना है। अकर्त्तव्या-कर्त्तव्य का औचित्य हमें दिश भ्रमित कर रहा है।

पुरातन काल से ही हम सत्यान्वेषण के प्रति अग्रणी रहे हैं। सत्यता की कसौटी पर साहित्यिक कल्पना को कसकर जन सामान्य के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। उपनिषदों में विज्ञान के लिये कहा गया है।

"विज्ञान ब्रह्मेति व्यजनात्। विज्ञाता द्ध्येव खन्विभानि भूतानि जायते॥ विज्ञानेन जातानि जीर्वान्त। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंतिशन्तीति॥ तैतरीयउपनिषद।३।५॥

विज्ञान को मानवता का परम हितैषी कहा गया है। जीव, ईश्वर, ब्रह्माण्ड चराचर आदि सच्चा अभिप्राय विज्ञान द्वारा ही प्रकटित हो सकता है। 'सत्यार्थ प्रकाश' के स्वमन्त-व्यामप्तव्य प्रकाश में जीव, ईश्वर, सृष्टि आदि के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं।

१—जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है, उसी को जीव मानता हूं।

२—जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याच्य-व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न है, अर्थात् जैसे आकाश से मूर्त्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा, इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्ध युक्त मानता हूं।

३—ईश्वर, जीव व प्रकृति ये तीन आदि पदार्थ जगत् के कारण हैं, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं।

४—'सृष्टि' उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्ति पूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना। सृष्टि का प्रयोजन है—ईश्वर के सृष्टि निमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना।

इन्हीं के प्रकाश में नवीन धारणाओं तथा वैज्ञानिक तथ्यों का भी प्रत्यक्ष उद्घाटन अभिप्रेत है। सृष्टि अनादि, अनन्त अविनाशी व नित्य है। अन्तरिक्ष की हमारी मान्यतायें आज स्पष्ट हैं। अमरीकी अन्तरिक्ष यात्रियों ने चन्द्रतल को देखने तथा अन्तरिक्ष में चक्कर लगाने का सफल प्रयास किया है। अपोलो—८ की यह ऐतिहासिक यात्रा हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियों का ज्वलन्त साक्षी है। रूस के अन्तरिक्ष यात्रियों ने भी अभूतपूर्व सफलता हासिल की है। विश्व की इस गति-शीलता के नेपथ्य में हमें मौन नहीं बैठना है। वेदादि ग्रंथों में समग्र बातें उल्लखित हैं किन्तु उनके सम्पर्क न्यूनता के कारण हमें नैराश्य का मुख देखना पड़ रहा है। वेदों का सम्यक् अध्ययन, प्रचार, प्रसार वैदिक मनन व गहन अध्ययन करने पर विज्ञान का सत्यापन स्वतः हो जाता है। जीव, ब्रह्म सृष्टि व उत्पत्ति सम्बन्धित नवीन अन्वेषणों से पार्थक्य भी हानिकर है। वैज्ञानिक अनुसन्धानों के प्रकाश में दिन प्रतिदिन की गवेषणाओं की भी विज्ञता अनिवार्य है। नई खोजों से यह पता चला है कि जीव प्रकृति में जल, सूर्य रश्मियों तथा

अमोनिया सदृश उत्सर्जित गैस के विद्युन्मय संयोग से धीरे-धीरे बन गये। आदि कल्प में पृथ्वी ग्रह एक अग्नि का दहकता गोला थी, क्रमिक शीतलता के फलस्वरूप विद्युत तरङ्गों के तड़क से यह संयोग हुआ था। आरम्भ में केवल प्रोटीन व न्यूक्लिधिक अम्ल ही बने थे जो धीरे-धीरे सचेतन बनकर जीव पिण्ड का रूप धारण कर लिए। एक कोशीय जीव परस्पर संयुक्त होकर बहुकोशीय स्पंज, हाइड्रा सदृश जीवधारी बनाये। अनादि तत्त्वों के योग से आरम्भ में मत्स्य फिर कच्छप, सर्प, बाद में पक्षी, स्तनधारी चमगादड़, कपि, गोरिल्ला वनमानुष और अन्ततः मनुष्यों के उद्विकास की परिकल्पना की जाती है। यद्यपि आत्मा अविनाशी व नित्य है, तदपि नश्वर पार्थिव शरीर पंचतत्त्वों से ही मिलकर बनी है, ये तत्त्व हैं—

'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा,
पंच तत्त्व मिलि रचित शरीरा।'

—गोस्वासी तुलसीदास

अनन्त सृष्टि में नानानिधि क्रियाकलाप स्वतः हुआ करते हैं। वैज्ञानिक परिवेश में हमें नवीन जागृति की आवश्यकता है। आर्यसमाज का वृहत्तर सन्देश जन-जन के मानस पटल पर अमिट रूप से अंकित कर देना ही अभीष्ठ है; शिवरात्रि की गरिमा इसी में सन्निहित है। वैदिक मिशन की कीर्ति को सम्पूर्ण मानवमात्र में मुखरित करने का ही अभिनव जागरण आर्यों के कर्त्तव्यों का मूल केन्द्र है। आज हम में उस भावना का लोप हो चला है जिस अविचल दृढ़ता, संयम व संलग्नता

से वेदों का सन्देश प्रत्येक मनुष्य अन्तस्थल पर छोड़ने का दृढ़ व्रत दयानन्द के जीवनकाल में तथा लाला लाजपतराय, महात्मा मुन्शीराम जी महात्मा आनन्दस्वामी, स्व० पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय, स्व० समर्पणानन्द प्रभृति जाजल्वमान विभूतियों ने हमें दिया था, वह सम्प्रति लुप्त-प्राय प्रतीत हो रहा है। उस ज्योति को पुनः प्रदीप्त करने का संकल्प हमें आज के दिन से लेना है। हमारे ज्ञान की चिरन्तन बोध-गम्यता तभी प्रतिविम्बित होगी जब आबाल वृद्ध एक मत होकर आर्य सन्देश को जन-जन के अन्दर समाविष्ट करने की सौगन्ध लेंगे; शिवरात्रि का ऋषिबोध तभी साकार होगा जब हममें सचेतनता की नई किरण आलोकित करेगी। हम में पुनः उस क्रान्तिकारी चित्तवृत्तियों का अभ्युदय होगा जो वलि दान के समय हुतात्मा श्रद्धानन्द, शहीद भगतसिंह सदृश मर-मिटने वाले महापुरुषों के अन्दर आविर्भूत हो गई थी। हममें जागृति की अटूट भावना का संचार ही रूढ़िवादिता का अन्त करने, मिथ्याडम्बरों, नास्तिकता, अविद्या, असत्याचरण के प्रति विद्रोह की ज्वाला का दिग्दाह कर पावेगा।

महर्षि दयानन्द ने सबके लिये समान रूप से सुखकारी विज्ञान की प्रशंसा अपने तत्कालीन उपदेशों, प्रवचनों, ग्रंथों, पत्रों आदि में किया है। कर्नल ब्रुक्श से वार्तालाप व ब्रिटिश शासकों से पत्राचार का ऋषि ने गोरक्षा, विज्ञान की महत्तम उपादेयता व भौतिकवादिता के विरुद्ध आक्रोश प्रकट किया है। ऋषि ने एक पत्र में लिखा था—

"पत्र........विज्ञान की शिक्षा सर्वजनीन कर मानवमात्र

के हित के लिये देनी चाहिये। ज्ञान, विज्ञान का द्वार प्रत्येक के लिये समान रूप से खुले हों ताकि अधिकाधिक लोग इसका सदुपयोग कर पावें। विज्ञान के सम्बन्ध में मेरी धारणा को यही समझो। इति।

'अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु भवान्'

ह० दयानन्द (स्वामी)

वैज्ञानिक उत्कर्ष के इस युग में जहां सत्य की ही उपासना अभीष्ठ है, वेदों व आर्यसमाज का लक्ष्य शत प्रतिशत सिद्ध होता प्रतीत हो रहा है। प्राचीन कपोल कल्पनाओं को क्षत विक्षत का अब केवल प्रत्यक्ष व सत्य को ही ग्रहण करने की ही परम्परा चल पढ़ी है। चन्द्रमा सम्बन्धी निर्मूल भ्रांतियाँ अब सबके मन से उठ गईं, रमणी कोचन्द्रमुखी की संज्ञा देना असत्य हो गया है, चन्द्रमा सम्बन्धी उपमाएँ अब सत्य के सामने धूमिल पड़ गये। अस्तु विज्ञान के प्रति दृढ़ता से आस्थावान होकर वेदों की महिमा अपौरुषेयता, निर्भ्रान्त चर्चाएँ, पाखंडों का खंडनऔर उचित का मण्डन ही अभिप्रेत होना चाहिये। हमारे अन्दर नई चेतना का समावेश होना ही शिवरात्रि का अभिनव सन्देश है। विद्यार्थियों, नवयुवकों, कृषकों, श्रमिकों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को आर्यत्व के प्रति अगाह करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य होना चाहये। आर्य कुमार सभाओं, आर्यवीर दलों तथा सबल प्रचार शुद्धि दलों के माध्यम से ईसाईयत का सर्वनाश व ऋषि के लक्ष्यों की पूर्ति का संकल्प पूरा करना ही उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करेगा।

●

आर्यो शिवरात्रि पर दीक्षा लो

—श्री पं० भगवानदेव जी शर्मा, संचालक,
महर्षि दयानन्द योगाश्रम–टङ्कारा (गुजरात)

जैनियों का कोई पवित्र दिन था। नगर में एक बड़ा भारी जलूस निकाला गया। जैन सम्प्रदाय के स्त्री पुरुषों का उत्साह उस जलूस में देखने लायक था। तरह-तरह के रंगीन कीमती वस्त्र धारण किये हुये वे लोग सड़क पर आगे बढ़ते जा रहे थे। उनके आगे उस सम्प्रदाय के साधु स्त्री पुरुष थे। उन साधुओं के त्यागी लिवास को तथा अनुयायियों के रंग-बिरंगी विलासी लिवास को देखकर मैं आश्चर्य में अवश्य पड़ा, परन्तु ज्योंही जलूस आगे बढ़ा त्योंही मैंने एक सुन्दर सजी हुई विकटोरिया में एक नवजवान, खूबसूरत कन्या को देखा. जिसका मुखड़ा कवि के शब्दों में लिखो तो चांद को भी शर्माता था. पूछने पर मुझे बताया गया कि "यह एक करोड़पति की एकमात्र कन्या है; जो दीक्षा ले रही है. दीक्षा लेने के पश्चात् यह साधु जीवन विताएगी और जैन ग्रंथों का अध्ययन करके उसका प्रचार करेगी।"

इसी प्रकार जैन नवयुवक आदि भी दीक्षा लेते हैं. जिनको दीक्षा देते समय असंख्य स्त्री-पुरुष बड़े उत्साह के साथ इकट्ठे होते हैं और उनका शानदार जलूस निकाला जाता है.

दयानन्द के वीर सैनिक बनने तथा दयानन्द का काम

पूरा करने वालो ! ऋषिबोध उत्सव के पवि
पर जिस दिन हमारे ऋषि ने बोध प्राप्त किया; आप अपने हृदय, घर और समाजों को टटोलो कि आपने अथवा आपके बच्चों ने या आपकी समाज में कितनी संख्या में लोगों ने दीक्षा लेकर दयानन्द का काम पूरा करने की कोशिश की ?

वास्तव में आर्यसमाज की वर्त्तमान स्थिति को देखते हुए आत्मा यही कहती है कि—"आजकल के स्वार्थी आर्यसमाजी दयानन्द का काम पूरा-अर्थात् 'समाप्त' या खतम करने बैठे हैं; मैंने कई ऐसे अपने आपको 'आर्य' कहलाने वाले हैं। जो स्वयं तो कुछ कर पाते नहीं; अन्य कोई आर्यसमाज की सेवा करता होगा तो उसकी टीका करने को तैयार हो जाते हैं—कि महर्षि जी ने ऐसा लिखा तैसा लिखा है और यह ऐसा चला रहा है या कर रहा है आदि ऐसी मनोवृत्ति रखने वालों से हम सिर्फ इतनी प्रार्थना करेंगे कि यदि आप ऋषि के सिद्धान्तों के इतने हामी हैं और आपकी उम्र ५० वर्ष से ऊपर की है तो, आपको अन्य बातें कहने से पूर्व वानप्रस्थ ले लेना चाहिये। क्योंकि ऋषि ने यह भी तो लिखा है कि "५० वर्ष पूरे होने पर वानप्रस्थ और संन्यास लेकर धर्माचरण करते हुये; धर्म प्रचार तथा प्रभु भक्ति में अपना मन लगाकर मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये।"

क्या आप ऋषि के इस सिद्धान्त का पालन करते हैं ? क्या आपने २५ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करके विद्या अध्ययन किया ? या अपने बच्चों को २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन

कराकर विद्या अध्ययन कराया ? यदि नहीं, तो ऋषि के सिद्धान्तों के ठेकेदार बनकर अन्यों की टीका करना बन्द करें।

हर साल शिवरात्रि पर बड़े-बड़े मेले लगाये जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व मथुरा में 'दीक्षा शताब्दी' मनाई गई। लाखों अपने अपाको ऋषि 'अनुयायी' और 'आर्य' कहलाने वाले वहाँ इकट्ठे हुए। लाखों रुपये खर्च किये गये। इन पंक्तियों के लेखक को भी उस अवसर को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। दीक्षा शताब्दी प्रोग्राम की समाप्ति पर जब मैं वापिस अपने निवास स्थान पर लौटा तब मुझसे एक प्रतिष्ठित जैन भाई ने पूछा—'पंडित जी ! आप इतने दिन कहाँ गये थे ?' मैंने उत्तर दिया—मथुरा में दीक्षा शताब्दी थी, वहाँ गया था तब उस जैनी महाशय ने जिज्ञासु भावना से पूछा—कितने लोगों ने दीक्षा ली ?' यह शब्द सुनकर मेरा मस्तिष्क चकराने लगा कि यह पूछ क्या रहा है और मैं उसे जवाब क्या दूं. आखिर मैंने उससे कहा—'मेरे देखने में एक ने भी नहीं ' तब उस जैनी महाशय को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसे ? दीक्षा शताब्दी—में एक ने भी दीक्षा नहीं ली. मैंने उन्हें कहा—हमारे गुरुवर ऋषि दयानन्द ने गुरु के चरणों में रहकर जब ज्ञान प्राप्त करके दीक्षा ली थी—उसकी सौ वर्ष पूरे होने आये थे, इसलिये यह प्रोग्राम रखा गया था।"

मैंने जैनी महाशय को उत्तर तो दे दिया; परन्तु मेरा मन विचार सागर में डूब गया। आंखों के चारों ओर मुझे-

दीक्षा ! दीक्षा !! शब्द दिखाई देने लगा . आत्मा ने कहा हम लकीर पीटते चले जा रहे हैं—धीरे-धीरे हमारे अन्दर भी पौराणिकों के अनुसार अन्धविश्वास घर करता जा रहा है, हम लकीर के फकीर बनते जा रहे हैं . जैसे पौराणिक, महापुरुषों की मूर्तियां सामने रखकर अन्ध श्रद्धा से उन्हें भगवान् मानकर पूजते हैं तथा जयन्तियाँ मनाते हैं उनका-सा जीवन अपना बनाने की कोशिश नहीं करते; यही हालत हमारी बनती जा रही है .

आर्यसमाज का ढोल पीटने वालो ! वैदिक धर्म की जय बोलने वालो ! जब तक आप बौद्ध,जैन तथा नारायणस्वामी सम्प्रदाय के अनुसार सही दीक्षा लेकर विश्व की विभिन्न भाषाओं को सीखकर संसार के कोने-कोने में फैल न जाओगे तब तक न समस्त विश्व आर्य बन सकेगा और न आप दयानन्द का काम पूरा कर सकेंगे, न वैदिक धर्म की जय होगी . नारे भले ही लगाते रहो ! गीत भले ही गाते हो . परन्तु होने का कुछ नहीं .

एक दिन एक आर्य समाजी घर पर भोजन कर रहा था . बच्चा बीमार था . अचानक उन्हें पता लगा कि पास वाले गांव में एक हिन्दू यवन-मत स्वीकार कर रहा है . भोजन को तथा बीमार बच्चे को छोड़ कर वह चूड़ीदार पाजामा तथा सर पर पगड़ी बाँधे हुये व्यक्ति उस गाँव की ओर जाने के लिये ट्रेन में सवार हुये . ट्रेन उस गाँव के छोटे स्टेशन होने के कारण नहीं रुकी . चलती गड़ी में से वह कूद पड़ा . दोड़ कर उस व्यक्ति के घर पर पहुंचे, जो यवन मत

स्वीकार करने को बैठा था . आते ही उस पगड़ी पहने हुये उस व्यक्ति ने उस सज्जन से पूछा—,'आपको आर्य (हिन्दू) धर्म में ऐसी कौन-सी कमी अथवा त्रुटि दिखाई दी जो आप यवनमत स्वीकार कर रहे हो? यवनमत स्वीकार करने वाले व्यक्ति ने कहा—यह मैं फिर बताऊँगा, पहले आप यह बताइये कि आपके यह बुरे हाल क्यों हैं? कपड़े फटे हुये—सारा शरीर घायल—यह सब कुछ क्यों? मुस्कराकर उसी पगड़ी वाले ने कहा सुना था आप यवनमत स्वीकार कर रहे हो, तब ट्रेन में बैठकर आपको समझाने के लिये आ रहा था . ट्रेन स्टेशन छोटा होने के कारण रुकी नहीं . समय हो चला था . इसलिये चलती ट्रेन में से कूद पड़ा . जिसका यह परिणाम है . यह बात सुनकर यवनमत स्वीकार करने वाले हिन्दू का हृदय पलटा उसने कहा जिस धर्म में आप जैसे जान पर खेलने वाले महान् व्यक्ति हैं, उस धर्म को मैं कभी नहीं छोड़ूंगा .'

पाठको! यह और कोई नहीं पगड़ी पहने हुये धर्मवीर पंडित लेखराम था . जिसका एक यवन (मुसलमान) ने विस्वासघात करके खंजर से खून किया था . इस घटना के पश्चात् सारे शहर पर आर्यसमाज का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वहाँ थोड़े ही दिनों में एक सुन्दर आर्य समाज मन्दिर बन गया, और वह शहर आर्यसमाज का एक गढ़ बन गया .

चांदनी चौक के चारों ओर संगीनें थीं . जन-समूह आगे बढ़ने की कोशिश में था . गोरा पल्टन गोलियाँ छोड़ने का तैयारी में थी . जलूस रुक गया . इतने में एक विशालकाय,

तेजस्वी आंखों वाला भगवे वस्त्र धारण किये हुये एक संन्यासी आगे बढ़े, छाती के बटन खोलते हुये उस विशाल-काय संन्यासी ने गोरा पल्टन को ललकारा 'चलाओ गोली' संन्यासी की गर्जना क्या थी मानो शेर की गर्जना हुई. जैसे जंगल में शेर गर्जना करता है, तो छोटे-छोटे जानवर इधर-उधर जान बचाकर भागते हैं, यही हाल संन्यासी की गर्जना से हुआ. चारों ओर सन्नाटा छा गया. गोरा पलटन की संङ्गीने झुक गईं. रास्ता साफ हो गया. जलूस शान के साथ आगे बढ़ा. यही क्रांतिवीर संन्यासी श्रद्धानन्द था, जिसने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना करके देश को असंख्य देश-भक्त नौजवान पैदा करके दिये हैं, और दे रहा है जिसको एक मतान्ध मुसलमान ने गोली मार कर खून किया था. उस संन्यासी की कर्म वीरता तथा तप के प्रताप के करण ही आज भारत की राजधानी दिल्ली में सवा सौ से भी अधिक आर्य समाजें हैं.

जब तक आर्यसमाज में स्वामी श्रद्धानन्द, पंडित लेखराम महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय, पं० गुरुदत्त, भाई परमानन्द, नारायण स्वामी, स्वामी दर्शनानन्द, महात्मा आत्माराम, धमृतसरी आदि जैसे त्यागी-वीर, जान पर खेलने वाले, महारथी थे, तब तक आर्यसमाज का बोलबाला रहा. परन्तु आजकल हमारा दिन प्रतिदिन पतन होता जा रहा है. हम अकर्मण्य होते जा रहे हैं. इसका कारण सिर्फ एक है, और वह है "पूर्वजों के अनुसार अपना जीवन समाज को अर्पित न करना." जबसे हमने समाज से अपना स्वार्थ साधने

की मनोवृत्ति अपनाई है; तब से हमारा तथा समाज का पतन शुरू हुआ है : मैंने ऐसे कई व्यक्ति देखे हैं जो नेता बनने के लिये अपने आपको आर्य समाजी कहते हैं; परन्तु समाज पर मुसीबत आने पर वही व्यक्ति कह देते हैं—आर्य समाज से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है .' ऐसे ढोंगी तथा स्वार्थी आर्यों से हम इतना ही कहेंगे, याद रखो ! यह मनोवृत्ति न आपको ऊँचा उठा सकेगी और न आपके समाज को आप यदि ऊँचा उठना चाहते हो तो अपना जीवन आज ही निर्भय होकर निःस्वार्थ भाव से समाज को अर्पण कर दो और अपने गुरु तथा अन्य पूर्वजों के समान पाखंड-खंडिनी पताका लेकर धर्मयुद्ध के क्षेत्र में उतर आओ; अवश्य आप अपने पूर्वजों के समान ऊँचा उठोगे और आपकी कीर्ति बढ़ेगी. आप ऊँचा उठोगे तो आपका समाज अपने आप ऊँचा उठेगा .

तो आर्यो ! आओ आज ऋषिबोध उत्सव पर अपना जीवन समाज को अर्पण करने के लिये 'दीक्षा' लें . वह दीक्षा जिससे हम अपना तथा जग का कल्याण कर सकें . जब हम दीक्षा लेकर बौद्ध, भिक्षुओं के अनुसार भूमण्डल पर वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिये निकल पड़ेंगे तभी हम वास्तव में सच्चे दयानन्द के वीर सैनिक कहला सकेंगे . दयानन्द का काम पूरा कर सकेंगे !! विश्व को आर्य बना सकेंगे !!! अन्यथा नहीं .

इसलिये ऋषि बोध उत्सव पर ऋषि की आत्मा तुमसे पुकार-पुकार करके कहती है—'आर्यो ! दीक्षा लो ! दीक्षा लो !! दीक्षा लो !!! वैदिक मानव धर्म का प्रचार करने के लिये दीक्षा लो

स्वाध्याय से सूर्य नाड़ी की जागृति तकः—

साधन अन्तर्बोध

★ब्रह्म विद्यार्थी जय प्रकाश मोक्षमार्गी.
सालहखेड़ी (जिला मुजफ्फरनगर)

[कैसे बोध हो कि स्वाध्याय, भक्ति, साधना और कर्म काण्ड से हमें लाभ हो रहा है, सफलता मिल रही है ? कहीं ऐसा तो नहीं कि अज्ञानता अथवा त्रुटि के कारण हमारा सारा प्रयास विफल हो रहा है। आइये, इस लेख के आधार पर हम अपना आत्म-निरीक्षण करें। यदि पाठकों ने ऐसे योगात्मक लेखों की ओर रुचि दिखाई, तो हम भविष्य में ऐसी और योग लेख मालाओं का मुद्रण करेंगे। —सम्पादक]

भूमिका—साधना काल में निरीक्षण का उसी तरह महत्त्व है जिस तरह संसार के अनेक कार्यों में। जो अनुभवी एवं योग्य हैं, वे चूंकि अपना लक्ष्य तथा मार्ग पूर्व ही नोट कर चुके हैं, अतः स्वयं उसे देखकर मिलान कर सकते हैं कि कहाँ क्या पतन या दोष हुआ है। जो ऐसे नहीं वे अपनी साधना के अनुकूल ग्रन्थ से या पर व्यक्ति से अपना मिलन करें। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि साधना कार्य का निरीक्षण करने कराने में कुछ भी शर्म भय का विषय

नहीं । अतः स्वतन्त्र निर्भय रूप से अपना निरीक्षण 'अपने साथ इंसाफ' की भावना की अहमियत को समझकर करें या दूसरों से करावें । जिससे गुण-दोष भी गुप्त शत्रु भी मालूम हों तथा कोई कसर बाकी न रहे । इससे बाद में पश्चाताप की गुँजाइश नहीं रहेगी ।

अन्तर्बोध या अन्तर्मुखी वृत्ति का मापनः—

विशेष पहिचानेंः—चाहे किसी की साधना का कोई भी मार्ग हो, प्रत्येक में योग किया जाता है । योग कहते हैंः—बाह्य वृत्ति को घटाना तथा अन्तर्मुखी वृत्ति का बढ़ाना । अर्थात् योग = बाह्य वृत्ति विनाश + अन्तर्मुखी वृत्तिवर्धन ॥ प्रश्नोत्तर से समझो ।

प्रश्न—बाह्यमुखी वृत्ति किसे कहते हैंः—उत्तरः—संसार मनुष्य और अध्यात्म ये तीन चीजें हैं । अध्यात्म से तात्पर्य है सूक्ष्म मन, प्रकृति, आत्मा, परमात्मा आदि । मनुष्य के सब व्यवहार दो प्रकार के हैं (१) साँसारिक विषय सम्बन्धीः—वे सब मन वाणी कर्म या पर प्राणी द्वारा किये व कराये जाने वाले कर्म धर्म जिनका सम्बन्ध बाहरी जगत् से है । सोने उठने बोलने बतलाने, कमाने खाने आने-जाने से लेकर मन में चिन्ता, द्वेष विषय विचार, स्थूल जगत् घर परिवार मित्र शत्रु सम्बन्धी सब तरह के विचार संकल्प विकल्प आदि विषय सम्बन्धी या बाह्य विषय कहलाते हैं, और इन सब बाहरी जगत् (सूक्ष्म मन आत्मा ईश्वर के स्वरूप को छोड़ कर बाकी दुनिया की हर चीज सम्बन्धी) के विषयों में लगने का नाम है बाह्यमुखी वृत्ति ।

अन्तरमुखी वृत्तिः—बाहरी जगत् के हर तरह के व्यवहार से मन को हटाकर जीवात्मा परमात्मा का स्वरूप देखने में आँखें बन्द करके ध्यान लगाना या आँखें खोले हुए भी मन से अन्तर ही अन्तर इन पर सोचना ही यह वृत्ति है।

योग का अर्थ है अन्तर्मुखी वृत्ति को बढ़ाने की सक्रिय चेष्टा या समाधि प्राप्त करने की युक्ति। कोई भी कार्य या योग साधना या ध्यान भक्ति यज्ञ पूजन आदि चार बातों के सहारे कियां जाता है—

१. हेय—प्रिय लक्ष्य जो प्राप्त करना है उसके विरोधी अलक्ष्य त्याज्य को हेय कहते हैं जैसे दुःख।

२. हेय हेतु—त्याज्य वस्तु के हमारे साथ लगे रहने का वास्तविककारण, जैसे—अज्ञान।

३. हान—जब त्याज्य वस्तु पूर्णतः, सदा के लिये स्थाई रूप से दूर हो जाय, वह नितान्त अभाव दशा जैसे—मुक्ति।

४. हानोपाय—त्याज्य वस्तु का नितान्त अभाव (हान) करने के साधन या उपाय या विधियाँ हानोपाय हैं। गहन अन्तर्दृष्टा जानते हैं कि करोड़ों वर्ष पूर्व ऋषि मुनियों आदि शास्त्रकारों द्वारा निश्चित ये चार बातें संसार के हर कोने में फैले हरेक कर्म साधना भक्ति आदि के आधार हैं। इन्हीं का क्रमशः नीचे वर्णन है। व्याख्यायें बहुत हैं। मुझे यहां व्याख्याकार बनकर बुद्धि वैभव सिद्ध नहीं करना-कराना है बल्कि औरतों तथा पुरुषों के एवं विवाहितों एवं अविवाहितों के प्रत्येक बिना पढ़े या कम पढ़े या सुशिक्षित वर्ग के लिए एक

दम वह नुस्खे या सामग्री आदि लिख देने हैं जिन्हें देखकर घंटों तो दिमागी परिश्रम न करना पड़े समय न लगाना पड़े बल्कि इस क्षण आंख से पढ़ा और दूसरे क्षण वैसा ही करना शुरू कर दिया और बस साधना रूप बनने लगा जीवन-व्यापन ।

शंका—यह कैसे विश्वास करें कि जो तुम लिख रहे हो वह सब वास्तव में ही सच है और लाभदायक ही रहेगा ?

उत्तर–(१) साँख्य शास्त्र का चौथा अध्याय, योग शास्त्र का साधनपाद, वेदान्त शास्त्र का तीसरा अध्याय, आदि ऋषि प्रणीत ग्रंथ पढ़ें व मिलान करें (आगम से पुष्टि) ।

(२) प्रत्यक्ष पुष्टि के लिए पातंजल योगाश्रम पुष्कर (राजस्थान का भ्रमण करें तथा परम पूज्यपाद स्वामी ओमानंद जी तीर्थ का सरल अनमोल ग्रंथ 'पातंजल योग प्रदीप' आर्य साहित्य मण्डल, श्रीनगर रोड अजमेर से मंगाकर पढ़ें ।

(३) स्वयं इन बातों पर चलकर छः महीने बाद की तथा अब की स्थिति का मिलान करके देखें ।

(सब प्रमाण अन्त में हैं)

उपर्युक्त के अलावा हम कह चुके हैं कि व्याख्या करना हमारा उद्देश्य नहीं, लेख का आकार बढ़ाने मात्र के लिये प्रमाण देना ऐसे विशाल विख्यात साधना क्षेत्र के लिये आवश्यक नहीं जबकि लाखों ग्रंथ अब तक सप्रमाण व्याख्या रूप छप चुके और यत्र-तत्र सर्वत्र बाजार में उपलब्ध हैं ।

हम अत्यन्त आवश्यक चौथे साधना आधार "हानोपाय"

के अन्तर्गत दैनिक जीवन साधन की सामग्री प्रस्तुत करते हैं। बस पढ़े और अपने वर्त्तमान जीवन व्यापन प्रबन्ध में हेर-फेर करके ऐसे प्रबन्ध शीघ्र बनाने का प्रयत्न कर लें। धन का खर्च भी कम होगा, समय भी बचेगा, सुख-समृद्धि भी आयेगी और परमोत्कर्ष मुक्ति भी आसानी से प्राप्त करने में यह जन्म सहायक सिद्ध होगा।

दैनिक जीवन साधन

इसके अन्तर्गत हम निम्नलिखित विषयों का वर्णन करेंगे-

[क] भक्त साधक उपासक के लिये भोजन के पदार्थ।

[ख] चलना फिरना यात्रादि ढंग (संयम)

[ग] कारोबार व्यवहार [घ] शयन या सोना

[घ] व्रत तीर्थ व उपवास आदि [छ[वाणी व्यवहार

[ज] मन की व्यवहार दशा [झ] साधना समय कुछ दीखे तो [ट] ईश्वर प्रणिधान या परमात्मा स्मरण में समय विचार।

[ठ] नाड़ी, ब्रह्मरन्ध्र, चक्र, तत्व ज्ञान आदि सम्बन्धी चित्र ज्ञान, रहस्य, साधना सीढ़ियों को सफलता के चिन्ह आदि विषय अध्यात्म शरीर भेद प्रकाश में दिये गये हैं।

[ड] साधक के लिये स्वास्थ्य अच्छा होना, निरोगता जरूरी है अत हठयोग की खतरे से रहित क्रियाएं, सरल, सस्ती परन्तु अचूक दवायें, सूर्य चिकित्सा,

सरल करणीय आसन विधियाँ 'रोग निवारण तथा स्वास्थ्य प्राप्ति' के अन्तर्गत दे दी गई हैं तथा साधना हेतु आवश्यक स्थान, वस्त्र, आसन, चादर आदि वर्णन इसी में है ।

[ढ] साधना में मन का रोकना मुख्य काम है, इसे रोकने के सरल, खतरे से रहित साधन, प्राणायाम विधियाँ 'मन निर्विषयता प्राप्ति के अन्तर्गत दे दिए हैं ।

[ण] धार्मिक किताबों का पढ़ना [श्रवण, पठन, अध्ययन] की सीमा, इसकी आवश्यकता तथा कौन-कौन से ग्रंथ अधिक सहायक व उपयोगी हैं यह सूची आदि 'साधक की अध्ययनचर्या' में दिये गये हैं ।

(अगले अंकों में ठ से त तक)

[त] गुरु की आवश्यकता व कहाँ गुरु की आवश्यकता है यह 'साधना गुरु व साधक में है ।

(क)—भोजन के पदार्थ

१—दाल व आनाजों में केवल:—गेहूं, मूँग, चावल तथा अन्य कोई जो वायु कारक तामसी, भारी, कुपच न हो ।

२—पेय पदार्थों में:—दूध, नींबू की शिकंजी, फल रस ।

३—फलों में—(ताजे रसदार हों) मीठा संतरा, मीठा अनार, (खट्टे नहीं); मुसम्मी (माल्टा) अंगूर, सेब, केला, मीठा आड़ू खूबानी ।

४—मेवों में:—बादाम, मुनक्का, अंजीर ।

५—सब्जियों में:—परवल, लौकी, तुरई,

(अगर चार रोटी खाते हैं तो तीन खावें)

सोने क पहले दूध या फल थोड़ी मात्रा में

पेट भरने में क्रम इस प्रकार रहे।

पेट का आधा भाग भोजन से भरे, एक चौथाई पानी से तथा एक चौथाई खाली (वायु के लिये) रहे।

(ख) साधक का चलना-फिरना यात्रादि संयम:—

१—लम्बी कठिन यात्रा का त्याग जिससे बेहद थकें।

२—चलना-फिरना बन्द न किया जावे जिससे तमोगुणी आलस्य तथा प्रमाद की आदत बनकर भजन में बाधा न हो।

इतना घूमें कि चित्त प्रसन्न, शरीर चौकन्ना रहे।

(ग) कारोबार व्यवहार:—

कमाने खाने घरेलू कार्यों डीवटी आदि करते रहें, परन्तु इतना परिश्रम (घोर मेहनत) न करें कि थकान हो जावे तथा न इतने निठल्ले आलसी बनें कि भजन में बाधा हो।

(घ) सोना (शयन):—

सात घण्टे से कभी भी अधिक न सोवें। चार घण्टे से कभी भी कम न सोवें, ताकि तमोगुण व कार्य भजन समय नींद न आवे।

(च) व्रत तीर्थ उपवास आदि की व्यवस्था:—

लम्बे उपवास, चन्द्रायण (एकादशी आदि) व्रत साधक

के लिये वर्जित हैं कभी नहीं करें। केवल सप्ताह में एक दिन पूरे दिन निराहार रहें।

(छ) साधक के लिये वाणी व्यवहार निर्देश:-

सप्ताह में एक दिन पूरा मौन रहे। सत्य बोले (कोई खतरा हो तो युक्ति से मौन रहे) प्रिय बोले (जो दूसरे को चुभे नहीं, भद्दा न लगे) आवश्यकता पड़ने पर ही बोले, व्यर्थ नहीं।

(ज) मन का व्यवहार:-

१-मन में इधर-उधर के सोच-विचार चिन्तन में न उलझा रहे। विषय रहित रहे।

२-हिंसा, किसी को सताने के भाव-जलन (डाह ईर्ष्या) वैर-भाव, दुश्मनी निकालने, बदला लेने की तरकीबें कभी किसी के बारे में न सोचें, चाहे वह अपने घर का आदमी हो चाहे बाहर का (ध्यान दें कि इसका मतलब कायरता नहीं, परन्तु मन से असमय बैरभाव चिन्तन करना तो व्यर्थ है, अगर कोई जुल्म करता है तो जितने समय उसका सामना करना है सिर्फ उतने समय ही युक्ति से प्रयत्न करें। पहले व बाद में मन को बैर भाव के विचारों से खाली रखे।

३-अपवित्र, धर्म विरोधी, सज्जनता विरोधी, सत्य विरोधी, दुर्भावनाओं, कुढ़न, भय, चिन्ता से मन को बचाये रक्खें उसी तरह जैसे पहने हुए वस्त्र (कपड़े) को गंदगी से बचाने का ध्यान रक्खा जाता है।

४–मन को किसी लाभ, हानि, प्रिय प्राणी, वस्तु अज्ञात विचित्रादि में ज्यादा समय न लगावें या तो निर्विषय (जब मन में कुछ भी न हो आकर्षण नामक कोई चीज न हो) रहे या ओ३म् या गायत्री या गुरुमन्त्र में लगायें या कर्त्तव्य पालन में।

(झ) साधना करते-करते कुछ दीखे साक्षात् हो तो यह भाव याद रखना:–

परमात्मा मेरा सब कुछ है, मेरे प्राण उसी के हैं चाहे तो ले ले। मुझे कुछ पता नहीं कि कहाँ उच्चतम सुख रहता है मैंने सब कुछ ही जब परमात्मा को सौंप रक्खा है, तब वही मार्ग दिखाने वाला गरु, वही मार्ग, वही दीखने वाला, वही दीखने वाले को पहचानने वाला, वही दीखने वाले के तेज को सहने वाला, वही खतरा उठाने वाला और वही खतरे से लड़ने वाला सबकुछ वही सर्व शक्तिमान् समय विचार–

(ट) ईश्वर प्रणिधान का समय परमात्मा के स्मरण हेतु:–

(प्रमाण के लिये देखो योग दर्शन भाष्य व्यास कृत)

सोने में बिस्तरे पर लेटे हुए या आसन पर बैठे हुए या राह में चलते हुए या किसी भी जगह किसी भी दशा में होते हुए एकान्त मन सा बना हुआ या कार्यरत शरीर होकर भी परमात्मा की याद पर याद करता रहे किसी भी नाम के रूप में या अनाम केवल 'वह है सब कुछ' इस आभास के साथ या ओ३म् के जप के साथ। जब इसी को सतर्क ध्यान विशेष

अभ्यास के रूप में (जप या भजन या ध्यानासन में एक जगह बैठकर) किया जाता है तो इसी को ध्यान योग या साधना कहते हैं।

हर साधक के लिये खास शरीर भेद शुद्धि, बीमारी रहितता, निर्विकारिता और स्वस्थता जरूरी हैं।

अतः यहाँ सबके लिये आसान करके दी गई हैं। (सावधानी, देख-रेख बहुत जरूरी हैं) ।

सभा के वार्षिक चित्र भर कर भेजिए

सभा से सम्बद्ध समस्त आर्यसमाजों एवं जिला उप प्रतिनिधि सभाओं को वार्षिक चित्रादि भेजे जा चुके हैं। जिन स्थानों पर फार्म न पहुंचे हों, वह सभा कार्यालय में पत्र भेज कर पुनः मगालें ।

२—सभा का प्राप्तव्य धन दशांश, सूद कोटि, चवन्नी फण्ड तथा प्रतिनिधि शुल्क सीधा सभा कार्यालय में भेजने की कृपा करें। किसी उपदेशक व प्रचारक को न दें।

३—चित्र सावधानी के साथ भर कर कार्यालय में आना चाहिए, ताकि बार-बार वापस भेजने में व्यर्थ का पोस्टेज व्यय न हो।

समाजों से अनुरोध है कि वह अपने चित्रादि नियमानुसार भर कर ३१ मार्च तक सभा कार्यालय में अवश्य भेज दें।

—प्रेमचन्द्र शर्मा, सभा-मन्त्री

क्या वेद में इतिहास है ?

(ले०—चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा, मीमांसातीर्थ)

ईश्वरीय ज्ञान वेद का प्रकाश सृष्टि के प्रारम्भ में हुआ लेकिन पाश्चात्य व कतिपय भारतीय विद्वानों ने ऋषि दयानन्द कृत सत्य भाष्य की उपेक्षा कर वेद में इतिहास माना है। इसका ही उत्तर यह ओजपूर्ण व प्रामाणिक ग्रन्थ है। मूल्य २) रु० ५० पैसे।

कर्म मीमाँसा

(ले०—आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री)

विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में कर्म के विविध विषयों तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर बहुत सूक्ष्म विवेचन किया है। स्व० श्री पुरुषोत्तमदास टन्डन, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, स्व० स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी, स्व० पं० गंगाप्रसाद जी, स्व० आचार्य नरदेव जी शास्त्री, श्री पं० प्रियव्रत जी व पं० धर्मदेव जी आदि ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मूल्य २) रु० २५ पैसे।

वैदिक इतिहास विमर्श

(ले०—आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री)

मेकडानल की "वैदिक इन्डेक्स" का समुचित उत्तर वैदिक इतिहासों का निर्णय देवतावाद की वैज्ञानिकी स्थिति पर अद्भुत व अनोखी पुस्तक मू० ७) रु० २५ पैसे, सजिल्द ८) रु०।

४—यह सामग्री ऋतु अनुसार तैयार की जाती है।

५—हमारी सामग्री अपार सुगन्ध की लपटें देने वाली है।

६—इस सामग्री में कुछ ऐसी जड़ी बूटियों का सम्मिश्रण है जिससे इस सामग्री से यज्ञ करने वाले परिवार सदा रोग मुक्त तथा स्वस्थ रहते हैं।

सामग्री के सम्बन्ध में कुछ सम्मतियां

सुप्रसिद्ध आर्य नेता पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री

(सदस्य लोक सभा)

१—"महर्षि सुगन्धित सामग्री" बहुत अच्छी है। जड़ी-बूटी पर्याप्त मात्रा में होने से लाभप्रद भी है और सुगन्धियुक्त भी। आशा है यज्ञ प्रेमी इसका अच्छा लाभ उठायेंगे।

—प्रकाशवीर शास्त्री

२०—२—६५

२—एक अमेरिकन व्यापारी की सम्मति—

आपकी भेजी सामग्री, धूप तथा धूपबत्ती सुरक्षित मिल गई। जहाँ तक मुझे सामग्रियों का ठीक अनुभव है, महर्षि सुगन्धित सामग्री निहायत उत्तम दर्जे की साबित हुई है है।

R. SHEORATAN Jeveler & Importer
Tourtonnelaan 19. Paramaribo Suriname
D. G. (S. America)

सामग्री का रेट:-

स्पेशल ६०) रु०, स्पेशल मेवायुक्त ७०) रु० प्रति ४० किलो के।

अपार सुगन्धित शुद्ध घृत, चावल, मेवा मिश्रित १००) रु० प्रति ४० किलो के।

संचालक—डा० वीरराम आर्य B. R. S.,

महर्षि सुगन्धित सामग्री भण्डार

केसरगंज, अजमेर (भारत)

जागृति अंक का मूल्य ५० पैसे

अमृत वर्षा

आत्म जागृति कैसे हो ?

महर्षि दयानन्द सरस्वती का आर्यों को

आ दे श

" सदा स्त्री-पुरुष १० (दस) बजे शयन और रात्रि के पिछले पहर व ४ बजे उठके प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्म और अर्थ का विचार किया करें, और धर्म और अर्थ के अनुष्ठान व उद्योग करने में यदि कभी पीड़ा भी हो तथापि धर्म युक्त पुरुषार्थ को कभी न छोड़ें; किन्तु सदा शरीर और आत्मा की रक्षा के लिये युक्त आहार-विहार, औषध सेवन, सुपथ्य आदि से निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्त्तव्य कर्म्म की सिद्धि के लिये ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना भी किया करें कि जिससे परमेश्वर की कृपा दृष्टि और सहाय से महा कठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सकें ।"

गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन का महोत्सव

महोदय, गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन का ६२ वां वार्षिक महोत्सव इस वर्ष १४ से १६ फरवरी १९६९ तक आयोजित हो रहा है। जिसके अन्तर्गत निम्न सम्मेलन विभिन्न तिथियों मे होंगे।

दिनांक १४ फरवरी शुक्रवार १९६९

संस्कृत सम्मेलन—अध्यक्ष-श्री डा. वेदपति जी मिश्र व्याकरणाचार्य एम.ए. पी-एच-डी., मुख्य निरीक्षक संस्कृत पाठशालाएं उ.प्र.

आयुर्वेद सम्मेलन-अध्यक्ष-श्री प. विद्याभूषण जी [illegible]

उद्घाटनकर्ता-श्री प. रामनारायण जी मिश्र, प्रधान सञ्चालक वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, काशी

दिनांक १५ फरवरी शनिवार १९६९

राष्ट्ररक्षा सम्मेलन—अध्यक्ष-श्री [illegible] प्रकाशवीर जी शास्त्री एम. पी.

उद्घाटनकर्ता-श्री इन्द्रकुमार जी गुजराल संचार राज्य मन्त्री भारत सरकार

शिक्षा-सम्मेलन—अध्यक्ष-श्री माननीय भागवत झा आजाद शिक्षा-राज्य मन्त्री भारत सरकार

उद्घाटनकर्ता—माननीय श्री डा. त्रिगुणसेन जी शिक्षा मन्त्री, भारत सरकार

आर्य सम्मेलन—अध्यक्ष-श्री प. शिवकुमार जी शास्त्री एम. पी. उपकुलपति—गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन

दिनांक १६ फरवरी रविवार १९६९

दीक्षान्त समारोह-दीक्षान्त भाषणकर्ता माननीय श्री मुरारजी देसाई उपप्रधान मन्त्री, भारत सरकार

व्यायाम सम्मेलन—रात्रि में ब्रह्मचारियों के व्यायाम प्रदर्शन होंगे।

—नरदेव स्नातक एम.पी. मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दावन (मथुरा)

स्वत्वाधिकारिणी, आर्यप्रतिनिधि सभा उ.प्र. के लिए भ०दी० आर्य भास्कर प्रेस, ५ मीरांबाई मार्ग, लखनऊ मु. प्रका. कृ. गो. शर्मा।
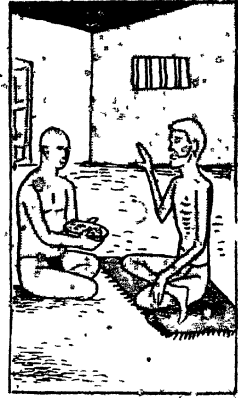
महर्षि दयानन्द

काशी शास्त्रार्थ शताब्दी

एवं

पाखण्ड-खण्डिनी पताका

शताब्दी के अवसर पर

प्रकाशित

★

सम्पादक—

—उमेशचन्द्र स्नातक

एम० ए०

मूल्य एक रुपया

सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार

यो भूतं च भयं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
अथर्व १०-८-१

अर्थ–जो सबभूत और भविष्यत् और (वर्त्तमान) के ऊपर शासन करता है, जिसका स्वरूप केवल सुख है, उस सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार हो।

यस्यः भूमि प्रमान्तरिक्षमुतोदरम ॥
दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणेनमः ॥
[अथर्व १०-७-३२]

अर्थ–जिसकी भूमि पैर और अन्तरिक्ष पेट के समान हैं, जिसने द्युलोक को सिर के समान बनाया है। उस सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार हो।

यस्यः सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्रआस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः
अथर्थ: १० ७-३३

अर्थ–सूर्य और वार-वार नया होने वाला चाँद जिनकी आँखों के समान हैं, जिसने आग को मुख के समान बनाया है। उस सब से बड़े ब्रह्म को नमस्कार हो।

यस्यवातः प्राणा पानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मैज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
अथर्व १०-७-४

अर्थ–वायु जिसका प्राण अपान श्वास निश्वास है, प्रकाश की किरणें जिसकी आँख के समान हुईं। जिसने दिशाओं को व्यवहार का साधन करने वाली बनाया है। उस सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार हो।

ओ३म्

'आर्य्यमित्र' हिन्दी साप्ताहिक

का

मूर्त्ति-पूजा निषेधाङ्क

विशेषांक

लखनऊ-रविवार मार्गशीर्ष ३० शक १८९१, मार्गशीर्ष शु० १३

वि०सं० २०२६, दि० २१, २८ दिसम्बर १९६९

दयानन्दाब्द १४५, सृष्टि संवत् १९७२९४०७०

मूल्य एक रुपया

वार्षिक मूल्य	१०)	वर्ष ७१
विदेश में	२०)	
एक प्रति	२५ पैसे	अंक ४७-४८

आभार-प्रदर्शन

पाठकों की सेवा में आर्यमित्र का यह मूर्त्तिपूजा निषेधाङ्क सादर समर्पित है। काशी में महर्षि दयानन्द की जो शास्त्रार्थ शताब्दी हो रही है, और उसके द्वारा जो आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार होगा, उसी योजना की यह एक कड़ी है। आशा है कि पाठकों को यह अङ्क रुचिकर प्रतीत होगा। इस अङ्क में 'मूर्त्ति पूजा अवैदिक है' वेदों में इसका विधान नहीं है, मूर्त्तिपूजा का आरम्भ कब से हुआ, और इससे देश की कितनी क्षति हुई है, और हो रही है आदि विषयों पर उच्चकोटि के विद्वानों के लेख दिये गये हैं।

जिन लेखकों और कवि महानुभावों ने हमारी प्रार्थना पर अपनी अमूल्य कृतियां भेजने की कृपा की है: उनके हम हृदय से कृतज्ञ हैं। जिन लेखकों के लेख स्थानाभाव से इस अंक में नहीं छप सके, उनसे हम बड़े विनीत भाव से क्षमा-याचना करते हैं। बचे हुये वे लेख साप्ताहिक अंकों में प्रकाशित कर दिए जावेंगे।

इस अंक को अच्छा बनाने का श्रेय तो उन्हीं विद्वानों को है, जिन्होंने हमारी प्रार्थना पर अपने सुन्दर लेख भेजकर हमारी सहायता की है। और इसके सम्पादन में जो त्रुटियां रही होंगीं, उनका सारा उत्तर दायित्व हमारे ऊपर है। इस के लिये प्रेमी पाठकों से हमारी प्राथंना है कि वे इस विशेषाङ्क को ऋषि दयानंद की काशी शास्त्रार्थ शताब्दी का एक उपहार समझ उसके लेखों की महत्ता पर दृष्टिपात करें और त्रुटियों के लिए हमें क्षन्तव्य समझें। विशेषाङ्क सामग्री और प्रकाशन कार्य में श्री नारायण गोस्वामी जी का सहयोग उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने सहयोग द्वारा अंक को विशेषता प्रदान कर दी है, उनके सहयोग के लिये हम विशेष आभारी हैं।

—उमेशचन्द्र स्नातक

सम्पादक

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

संकल्प की वेला

[पाखण्ड-खण्डिनी एवं काशी शास्त्रार्थ शताब्दी]

महर्षि दयानन्द मानव इतिहास के ऐसे प्रकाश पुञ्ज हैं जिसकी दिव्य प्रभा से अज्ञान, अन्याय, अभाव, और सभी कल्मष तमस नष्ट हो जाते है। गुरु विरजानन्द की दीक्षा में दीक्षित हो दयानन्द ने अभियान आरम्भ किया, परन्तु शीघ्र ही उन्हें अनुभव हुआ कि वे भी दूसरे धर्म गुरुओं की भाँति चेलों और डेरे तम्बू के बखेड़े में फंसकर अपनी शक्ति नष्ट कर रहे हैं। हरिद्वार कुम्भ में पाखण्ड खण्डिनी पताका गाड़कर उन्होंने अज्ञान के विरुद्ध हुंकार मारी। सारा कुम्भ अकेले दयानन्द की वाणी से गूंज उठा और सर्वत्र दयानन्द की ही चर्चा थी। विचार, विवेचन और विवाद में दयानन्द का कोई समकक्ष न हुआ, लेकिन अपनी ज्ञान-विजय से उनकी आत्मा सन्तुष्ट न थी और एक कदम आगे बढ़कर अपनी सारी सम्पत्ति डेरे, वस्त्र और पुस्तकें भी दान कर सर्वत्यागी बन वे संसार समर में कूद पड़े। पाखण्ड खण्डिनी पताका द्वारा उन्होंने धार्मिक एवं सामाजिक पाखण्ड का समूल नाश करने का संकल्प लिया था, उसको व्यापक रूप देना था। अगला कदम बढ़ते-बढ़ते काशी पहुंचा और वहाँ काशी नरेश

की अध्यक्षता में महर्षि दयानन्द ने २७ शास्त्रार्थ महारथियों से अकेले शास्त्रार्थ किया और सबको निरुत्तर किया । इन दोनों ऐतिहासिक घटनाओं से आर्यसमाज के कार्य कर्त्ताओं को प्रेरणा और उत्साह मिलना स्वाभाविक है । इसी लिये आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश ने काशी में शताब्दी समारोह का आयोजन किया है । समस्त आर्य जगत् की भावनाओं को संजोये हुए सभा ने यह निश्चय किया और आज वह घड़ी आ गयी है जब आर्यसमाज इस शताब्दी से एक नये जीवन में प्रवेश करेगा । मथुरा की महर्षि दयानन्द की जन्म और दीक्षा शताब्दियों को आर्यसमाज का ऐतिहासिक समारोह माना जाता है । हमें पूर्ण विश्वास है कि यह समारोह भी अपनी ऐताहासिक छाप छोड़ेगा ।

प्रायः इस प्रसंग में चर्चा उठी है कि यह समय संघर्ष और मतभेदों का नहीं है, परन्तु आर्यसमाज कभी संघर्ष और मतभेद उत्पन्न नहीं करता, अपितु वह सत्य की खोज में दृढ़ रहना चाहता है । पहले शास्त्रार्थ होते थे, कोई कटुता नहीं होती थी, अब क्यों होगी, जो सच्चाई की खोज और प्रचार को रोकना चाहते हैं, वे आर्यसमाज के हितैषी नहीं उनके लिये आर्यसमाज में कोई जगह रखना आर्यसमाज को नष्ट करना होगा । हमने अपना कदम बढ़ा लिया है, जिसे साथ चलना हो आगे बढ़े और काम करे । महर्षि ने हमें सिखाया है, सिद्धान्तों में समझौता मत करो, नहीं तो नष्ट हो जाओगे । इसलिये हमें हिन्दू संगठन के नाम पर झूठी एकता की आव-

श्यकता नहीं है, हम भारतीयता का और वैदिक धर्म का शुद्ध स्वरूप देखना और दिखाना चाहते हैं। आज हम उन सभी शास्त्रार्थ महारथियों, आर्य विद्वानों और आर्य नेताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य समझते हैं जिनके पावन पुरुषार्थ से महर्षि दयानन्द का मिशन आगे बढ़ सका। आज हम संकल्प लें कि उनके छोड़े कार्य को हम पूरा करेंगे जो संकल्प लेगा और कार्य करेगा आर्य जगत् उसे ही महर्षि का सच्चा अनुयायी मानेगा और जो अपने स्वार्थों के लिये समझौतावादी बनेंगे उन्हे कोई महत्त्व न देगा।

आर्यसमाज का कार्य किसी के प्रति द्वेष भावना से पूर्ण नहीं है और यही कारण है कि हमें दूसरों के हृदय, मन और बुद्धि में स्थान पाने में सफलता मिली है और मिलेगी।

महर्षि दयानन्द ने कहा था—मेरा धार्मिक लक्ष्य सार्व-जनिक है, उसे संकुचित नहीं किया जा सकता, भारतवासी लम्बी तानकर ऐसी गहरी नींद सो रहे हैं कि मीठे शब्दों से तो आँख तक खोलने को तैयार नहीं होते। सुधार का ये नाम तक नहीं लेते। कुरीतियों और कुनीतियों के खण्डन रूप कड़े कोड़ों की तड़ातड़ध्वनि से यदि ये जाग जायँ तो ईश्वर को कोटि-कोटि धन्यवाद करूँगा।' आज भी आर्यसमाज के सम्मुख भारतीय जनता का यही स्वरूप है। और उसे अपने कर्त्तव्य को स्मरण रखना चाहिये।

कर्त्तव्य की वेला आ गयी है, कदम बढ़ाये चलो, चरैवेति चरैवेति हमारा घोष है, सफलता हमारा वरण करेगी।

प्रतिमा शब्द और मनुस्मृति

मनुस्मृति के दो श्लोकों में प्रतिमा शब्द आया है, उसके आधार पर मूर्तिपूजक कहते हैं कि मनु ने भी मूर्ति पूजा का समर्थन किया है, परन्तु महर्षि दयानन्द ने इसका निराकरण इन शब्दों में किया है—

'प्रतिमीयते ययासा प्रतिमा' अर्थात् प्रतिमानम् जिससे प्रमाण अर्थात् परिमाण किया जाय उसको कहना प्रतिमा, छटांक, आध पाव, पावसेर, पसेरी इत्यादिक और यज्ञ के पात्र, क्योंकि इनसे पदार्थों के परिमाण किये जाते हैं। इससे इन्हीं का नाम प्रतिमा है। मनुस्मृति में श्लोक है :—

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात् सुलक्षितम्।
षट्सु षट्सु च मासेसु पुनरेव परिक्षयेत्॥

अर्थात् राजा को चाहिये कि प्रति छः छः मास के अनन्तर तुला (तराजू) की जाँच किया करे। इसी प्रकार प्रतीमान अर्थात् प्रतिमा की भी परीक्षा अवश्य करे। दुकान के बाँट जितने हैं उन्हीं का ही नाम प्रतिमा है, उनके अधिक न्यून होने की जाँच राजा को करनी चाहिये!

संक्रमध्वज यष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः।
प्रतिकुपच्चि तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छ्तानि च॥

सक्रम (रथ) उसके ऊपर ध्वज की यष्टि (लकड़ी और प्रतिमा (बाँट) इन तीनों को तोड़ने या अधिक न्यून करने वाले को राजा दण्ड देवे और जो हानि हुई हो उसे ठीक करवा देवे।

इस प्रकार सज्जन लोग बटखरा (बाँट) और चमसादिक यज्ञपात्रों आदि को ही प्रतिमा शब्द से निश्चित जाने।'

(श्री ताराचरण कवि रत्न के साथ हुगली में सम्पन्न शास्त्रार्थ में महर्षि दयानन्द द्वारा स्पष्टीकरण)

भागवत में मूर्ति-पूजा निषेध

भागवत को मूर्त्ति पूजक अपना समर्थक ग्रन्थ मानते हैं परन्तु हम नहीं जानते भागवत का यह श्लोक मूर्त्ति पूजा का खण्डन करने में हमारा समर्थन क्यों और कैसे कर रहा है—

यस्यात्म बुद्धि कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः
यत्तीर्थ बुद्धि सलिलेन कर्हिचित्
जनेषु भिज्ञेषु स एव गोखरः
—भागवत १०-८४-१३

अर्थात् जो मनुष्य इस शरीर को ही आत्मा समझते हैं। स्त्री पुत्रादि के साथ जो ममत्व भावना रखते हैं, मिट्टी, पत्थर, काष्ठ आदि से बनी हुई मूर्त्तियों को पूज्य या देवता तुल्य मानते हैं तथा जलों में तीर्थ बुद्धि से काम लेते हैं. ऐसे सभी लोग विद्वानों के मध्य में गधे के समान हैं।

[इस श्लोक के अर्थ पर हम अधिक टिप्पणी नहीं चाहते हैं पाठक सभी विद्वान् हैं। —सम्पादक]

दयायाः आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्य वचना
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा राष्ट्रिशरणा
स को दान्तः शान्तो विदितविदितो वेद्यविदितः

शास्त्रार्थ शताब्दी सप्तक

[रच०-कविवर 'प्रणव' शास्त्री एम० ए० फीरोजाबाद]

ज्ञान या विज्ञान का था लोप हुआ भारत में
वेद भानु-मण्डल पै घने घन छा गये
तामसी ताने थे वितान कोटि कज्जल के
पावन प्रशस्त पथ पान्थ विसरा गये।

झञ्झावात झञ्झाट में संस्कृति कापोत फंसा
कर्णधार हिम्मत को हार घबरा गये
'प्रणव' कृपा से तभी प्रबल प्रतापी ऋषि
पाखण्ड की खण्डनी पताका लिये आगये।१

कहीं थीं कुरान करामत थी दिखाती खड़ी
पैगम्बर अम्बर से पैगाम थे ला रहे
इञ्जील की जंजीर ने जकड़े कहीं थे लोग
पाप क्षमा होने का था नुसखा बता रहे

कहीं तो पुराण किए पाखण्ड प्रतिष्ठा पूर्ण
त्रिपिटक धम्मपद जनों को गिरा रहे
बुद्धि या विवेक से थे नाता सभी तोड़ बैठे
मिथ्या मत मानवों को झूले में झुला रहे ॥२

घोर कर्म-कौशल का कवच अभेद्य चला
वैभव विपक्षियों के पक्ष सा उखाड़ता
हो गयी प्रकम्पित दिशाएं थीं तूफान उठा
मिथ्या मान्यताओं के उपवन उजाड़ता

प्रतिभा कमान पै चढ़ाए तर्क तीर तीखे
पण्डितम्मन्यों की वह प्रभुता पछाड़ता
बड़े-बड़े वीर रण धीर रण छोड़ भागे
आया नरसिंह दयानन्द जो दहाड़ता।३

आरती जहां थी नित्य पाषाण की मूर्त्ति की ही
आध्यात्मिक अर्चा की कौन करे आरती
साधना ही देवता के नाम से चुने जो ईंटें
आधिदैविक ज्ञान की सुनावे कौन भारती

पाण्डित्य प्रथा ही बनी दासी भूतप्रेतों की तो
आधि भौतिक अर्थ को सिखाए कौन भामती
'प्रणव' अनाथ हुई प्यारे विश्वनाथ की ये
काशी ही त्रिसूल० में हो बसी थी कराहती।४

स्वाभाविक ज्ञान बल क्रिया के कलाप से ही
सृष्टि सुन्दरी को जो सुहागिनि बनाता है
अमित दया का दान दानी दिव्य देता रहे
पालने के पालने में सभी को झुलाता है

---

० त्रयताप।

प्रलय की वेला में जो मेला ये समेट लेता
ब्रह्मा विष्णु जो महेश मान्यता मनाता है
नित्य निराकार सर्वाधार सर्व प्राणियों में
वही विश्व बन्धु वेद विद्या का विधाता है ।५

प्रभु सर्वव्यापक है जो कि एक देशी नहीं
लाना और जाना नहीं कैसे अवतार है
'अव्रण' 'अकाय' और 'अस्नाविर' सदा देव
'सपर्यगाच्छुकं' सत्य तथ्य का प्रसार है

'नतस्य प्रतिमा अस्ति यस्यनाम महद्यशः'
कितन विमल श्रुति स्रोत ये उदार है
प्रतिमा की अर्चना न वेद बतलाता कहीं
देव दयानन्द ने ही दिया ये विचार है । ६

काशी की परम्पराएं कल्पित कथाएं हुईं
सुन-सुन देव दयानन्द की मुनादियाँ
शास्त्रार्थ समर मध्य पौरुष ऋषि का देख
मठाधीश महन्तों की हिलने लगीं गादियाँ

कौन नहीं जानता है मौन मतिमान हुए
हृदयों में लगीं ऋषि-जय की समाधियाँ
'प्रणव' कभी न 'मूर्त्ति पूजन' यह सिद्ध होगा
बीती है शताब्दी और बीतेगी शताब्दियां ।७

मूर्त्ति-पूजा का मूल स्रोत

श्री डॉ० मुंशीराम जी शर्मा 'सोम' एम. ए., डी. लिट्.
आर्यनगर, कानपुर

दार्शनिक सत-असत, चित-अचित के कारण कार्य विवेचन में अनेक स्थापनायें करते हुये स्वयं तो संदेहशील रहे ही, अपने अनुयायियों को भी कोई निश्चित दिशा नहीं दिखा सके। हेकल और डारविन पश्चिम में असत से सत तथा अचित से चित्त की उत्पत्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते रहे। भारत में बृहस्पति तथा चार्वाक भी इसी सिद्धान्त के प्रतिष्ठाता समझे गये हैं। इनकी दृष्टि में अचित से ही चित का कालांतर में आविर्भाव हो जाता है। ठीक इसके विपरीत दूसरी विचारधारा है जो चित से ही अचित का आविर्भाव स्वीकार करती है। अचित से चित तक पहुंचना और चित से अचित का प्रगट होना—दो ऐसी प्रतिकूल विचारधारायें हैं, जिनमें आज तक सामञ्जस्य नहीं हो सका। इन्हीं के साथ एक तीसरी विचारधारा भी दार्शनिक क्षेत्र में उपस्थित की गई, जिसके अनुसार चित एवं अचित-दो पृथक् मौलिक सत्ताएँ हैं। दोनों का अन्योन्य प्रभाव तो होता है, परन्तु सत्ता की दृष्टि से दोनों भिन्न-भिन्न हैं। चित को

पुरुष एवं अचित को प्रकृति भी कहा गया है। पुरुष भी दो प्रकार का है—जीवात्मा और परमात्मा। जीवात्मा प्रकृति के संसर्ग से विविध कर्म करता और भोग-भोगता है। परमात्मा इस क्रिया से नितान्त पृथक् है। कर्म का परिणाम सुख-दुःख में दिखाई पड़ता है। परमात्मा में न सुख है, न दुःख है। कर्म के विपाक से वह एकदम असम्पृक्त है। उसे द्रष्टा मात्र कहा गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में परमात्मा को ईश्वरों का भी ईश्वर, देवताओं का भी देवता, पतियों का भी पति, परे से परे, भुवनेश्वर और स्तुति के योग्य माना गया है। निखिल ब्रह्माण्ड के सृष्टि, स्थिति और संहार का वही कारण है। उसका ज्ञान, उसका बल और उसके कर्म स्वाभाविक हैं। वह जीव एवं प्रकृति दोनों का अधिपति है। सबको बस में रखने वाला है। एक ही बीज को वह अनेक रूपों में फैला देता है। वह नित्यों में नित्य एवं चेतनों में चेतन है। जीवात्माओं के सम्बन्ध में उसे शासक, स्वामी या राजा कहा जाता है। जीवात्माएँ उसी से याचना करती हुई अपने अभीष्ट को उपलब्ध करती हैं। एक होता हुआ भी वह अनेक आत्माओं को फल देने वाला है। जीवात्मा इसी परम सत्ता को जानकर शान्ति एवं शाश्वत आनन्द की उपलब्धि करता है।

जब हम जीवात्मा एवं परमात्मा—दोनों को पुरुष की संज्ञा देते हैं, तब 'पुरुष' का अर्थ होता है पुरी में निवास

करने वाला। 'पुरिशेते इति पुरुषः।' जीवात्मा स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तीन शरीरों में रहता है। परमात्मा ब्रह्माण्ड भर में व्याप्त है। इसलिये उसे विश्व-बपु भी कहा जाता है। विश्व-बपु का अर्थ है-'निखिल ब्रह्माण्ड रूपी शरीर में रहने वाला।' प्राणियों में मनुष्य सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। उसके पास शरीर का जो सम्भार है वह ब्रह्माण्ड के ही समानान्तर है। इसीलिए वेद जीवात्मा के शरीर और अवयवों की भाँति परमात्मा के भी ब्रह्माण्ड रूपी शरीर और अवयवों का उल्लेख करता है। मूलतः जैसे शरीर इस जीवात्मा से पृथक् है, परन्तु इन शरीरों के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति होती है, वैसे ही परमात्मा भी अरूप है, अशरीरी है। परन्तु यह ब्रह्माण्ड उसको भी अभिव्यक्त कर रहा है। शरीर में पैर-हैं, ब्रह्माण्ड में पृथ्वी पैरों के ही समान है। शरीर में उदर, तो ब्रह्माण्ड में अन्तरिक्ष है। शरीर में शिर तो ब्रह्माण्ड में व्योम है। शरीर में आंखें है तो ब्रह्माण्ड में सूर्य एवं चन्द्र हैं। इसी प्रकार अग्नि मुख है, वात प्राणापान है, विद्युत अंगों का रस है, और दिशाएं श्रोत्र हैं। अथर्ववेद के इस ज्येष्ठ ब्रह्म के ही समान, चारों वेदों में उपलब्ध पुरुष सूक्त का यज्ञ पुरुष भी इसी प्रकार के अवयवों वाला माना जाता है। वस्तुतः न तो आत्मा की ही कोई मूर्ति है और न परमात्मा की ही। उसकी प्रतिमा का निषेध यजुर्वेद के बत्तीसवें अध्याय में किया गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि वह सबका प्रतिमान है, और चित-अचित जगत्

में रमा हुआ होने पर भी इन दोनों से अति क्रान्त है; अर्थात् इनसे पृथक् भी स्थित है। वह इनके अन्दर है और बाहर भी। मूर्तियाँ प्राकृतिक हैं। आत्मा प्रकृति और उसकी विकृति दोनों से दूर है। यजुर्वेद ४०-८ में उसे अकायम् कहा गया है। ईश्वर शरीर रहित है। उसकी कोई काया नहीं है। जीवात्मा को जिस प्रकार शरीर धारण करने पड़ते हैं, उस प्रकार ईश्वर को नहीं। शरीर में व्याप्त होने के कारण जैसे जीवात्मा पुरुष कहा जाता है, वैसे ही ब्रह्माण्ड में व्याप्त होने के कारण ईश्वर को भी पुरुष कहते हैं। परन्तु वह सर्वांशतः ब्रह्माण्ड में नहीं समा पाता। ब्रह्माण्ड तो उसकी महिमा है। परम पुरुष इसके भी परे और कई गुना बड़ा है। वह महान् से भी महान् है। पुरुष सूक्त में उसे सहस्रों शिरों, आंखों, पैरों वाला कहा गया है। यदि कोई व्यक्ति इसकी मूर्त्ति बनाना भी चाहे तो नहीं बना सकता। सहस्रों शिरों आदि का जो उल्लेख परम पुरुष के सम्बन्ध में किया जाता है, वह सम्भवतः अनेक ब्रह्माण्डों अथवा सौर्य लोकों के द्यावा आदि के सम्बन्ध से है। शिर वाले प्राणी भी अनेक हैं। सब में व्याप्त होने के कारण भी उसे ऐसा कहा जा सकता है। परन्तु वह वास्तव में अरूप है, निर-अवयव है। जीवात्मा कभी पुरुष, कभी स्त्री और कभी नपुंसक का रूप धारण करता है। परमात्मा को भी वेद में स्त्री, पुमान, कुमार, कुमारी, बाल-वृद्ध आदि लिंगों में नाम दिये गये हैं। 'तत्शुक्रम्, तद्ब्रह्म। एकं वा इदम्' आदि पदों में वह

नपुंसक लिंग में वर्णित हुआ है। यदि कोई एक समय में स्त्री या पुरुष है तो उसको रूप की कल्पना की जा सकती है। परन्तु जो शाश्वत रूप से सभी लिंगों में उल्लिखित होता है, उसे कल्पना भी किसी विशिष्ट शरीर में कल्पित नहीं कर सकती। अकल्पनीय तथा अवर्णनीय होने के कारण कहीं-कहीं उसे शून्य के रूप में भी चित्रित किया गया है। यह कल्पना शक्ति की ऊँची से ऊँची उड़ान है। शून्य-शून्य है। उसका कोई आकार नहीं है। एक बिन्दु के रूप में वह कल्पित कर लिया जाता है। परन्तु जिस विन्दु को हम बिन्दु कहते हैं, वह भी वस्तुतः शून्य नहीं है। हाँ एक वृत्ताकार आकृति उसके रूप में कल्पना के रूप में आंखों के सामने आ जा सकती है। पृथ्वी-चन्द्र आदि का रूप भी वृत्त या मण्डल से मिलता जुलता है। इसीलिये ब्रह्माण्ड को भी इसी रूप में चित्रित किया जाता है। सम्भव है जिसे हम लिंग पूजा कहते हैं उसका यही आधार हो। यज्ञ में भी आहुति-सामग्री की जो पिण्डी बन जाती है, वह भी इसी आकार की होती है। शिवलिंग की प्रतिष्ठा का मूलस्रोत यज्ञ संस्था ही है—ऐसा हमने अपने ग्रन्थ 'भक्ति का विकास के 'यज्ञ से मूर्त्ति पूजा तक' शीर्षक प्रकरण में सिद्ध किया है। जो विद्वान् लिंग पूजा से 'शिश्न देव' का या 'फेलिक वर्शिप' की कल्पना करते हैं, उनका मत ग्राह्य नहीं जान पड़ता। लिंग का अर्थ चिन्ह या प्रतीक है। उपनिषदों में दहर विद्या के साथ प्रतीकोपासना का भी उल्लेख है। प्रतीकोपासना का

पार्थिव आधार लिंग पूजा ही है। मूर्त्ति पूजा का प्रारम्भिक रूप भी यही है। कालान्तर में महान् पुरुषों की प्रतिमाओं का निर्माण हुआ और वीर पूजा के रूप में उनका प्रचार हुआ। जैनियों ने अपने मन्दिरों में तीर्थङ्करों की मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित की हैं। बौद्धों ने भी ऐसा ही किया है। हिन्दू धर्मावलम्बियों ने भी महापुरुषों में अँशावतारों की कल्पना करके मूर्त्तियों का निर्माण किया और अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ। मूर्त्तिकला के श्रेष्ठ निदर्शन आबू पर्वत, खजुराहो, सांची, अजन्ता, एली फेन्टा आदि में दृष्टिगोचर होते हैं।

वेद में मूर्त्ति पूजा का ऐसा विधान उपलब्ध नहीं होता. (ॐ) ओ३म् के स्मरण की, ध्यान तथा जप की चर्चा ऋषियों ने की है। इस ओंकार को लिपिबद्ध रूप में चित्रित करने का भी प्रयास किया गया। अरबी में अल्लाह जिस रूप में लिखा जाता है, वह रूप देवनागरी लिपि में अंकित ॐ के सदृश ही है। परवर्ती युगों में शुण्डाकार गणेश की मूर्त्ति, शिर, ग्रीवा तथा बाहुओं में नागों को धारण किये हुये शंकर की मूर्त्ति उनके त्रिशूल का आकार, त्रिभंगी कृष्ण की मुद्रा तथा स्वस्तिका आदि सभी में ॐ के इसी रूप को निबद्ध करने का प्रयास किया गया है।

मूर्त्तिपूजा आज जिस रूप में प्रचलित है, वह प्राक्कालीन आर्यों की पूजा पद्धति से भिन्न

है। जो मूर्त्तिपूजक प्रतिमा को भगवान के ध्यान का माध्यम मानते हैं, वे भी प्रतिमा के स्थान प्रर भगवान् के ध्यान को ही अधिक महत्त्व देते हैं। गीता में अव्यक्त ईश्वर को व्यक्त प्रतिमाओं में आबद्ध हुआ मानने वाले अबुद्धि कहे गये हैं। श्रीमद्भागवत-स्कन्ध तीन अध्याय उनतीस, श्लोक बाइस में मूर्त्ति पूजा की निन्दा निम्नांकित शब्दों में की गई है—

'यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चाम् भजते मौढ्यात् भस्मनि एव जुहोति सः।'

अर्थात् सर्वान्तर्यामी प्रभु की अवहेलना करने वाले और मोह वश प्रतिमा पूजन करने वाले व्यक्ति वैसे ही हैं जैसे कोई भस्म में हवन कर रहा हो।

भागवतकार ने एक श्लोक में ऐसे मूर्त्तिपूजकों को बैल और गधा भी कह दिया है। हिन्दुओं षोडश उपचार वाली मूर्त्ति पूजा अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखती है। दैत्यों की सभ्यता में सूर्य के विशाल मन्दिरों के अवशेष, बेबीलोनियाँ, इजिप्ट, अमेरिका आदि में पाये गये हैं। जापान आदि में भी बौद्ध मन्दिरों का बाहुल्य है। कम्बोज जावा तथा सुमात्रा में रामायण और महाभारत काल के चित्र मन्दिरों पर अंकित पाये गए हैं। भारतीय मन्दिरों का इतिहास इनसे अधिक पुराना नहीं है।

अतः ऐतिहासिक दृष्टि से भी मूर्त्तिपूजा अर्वाचीन काल

की सिद्ध होती है। आर्यों के प्राचीन साहित्य में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। वैष्णव भक्ति का प्रारम्भिक युग भी ध्यान-योग आदि का ही युग है। मूर्त्ति पूजा का प्रचार वैष्णव सम्प्रदाय में दाक्षिणात्यों के संसर्ग से हुआ। शाक्त सम्प्रदाय में काली या दुर्गा की पूजा परम तत्त्व को नारी रूप में स्वीकार करती है, जिसे शक्ति कहा गया है। इन सम्प्रदायों के विरुद्ध समय-समय पर आन्दोलन होते रहे हैं। गोरखनाथ, कबीर, नानक आदि इस प्रकार के आन्दोलन कर्त्ताओं में प्रमुख हैं। आधुनिक युग में मूर्त्ति-पूजा के विरुद्ध जिन्होंने प्रबल आन्दोलन का प्रवर्त्तन किया, वे स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। उनका स्थापित किया 'आर्य समाज' मूर्त्ति पूजा के विरोध में अपने जन्म काल से ही प्रयत्न करता रहा है। हम चित्र कला को महत्त्व देते हैं, परन्तु मूर्त्ति के रूप में परमात्मा-पूजन को नहीं। मूर्त्ति परमात्मा हो भी नहीं सकती। कहाँ प्रभु का चेतन और आनन्द रूप और कहां मूर्त्ति की जड़ता। हमें जड़ की नहीं, चेतन की उपासना करनी है, आनन्द के साथ संगति करनी है। उत्थान का भी यही एकमात्र साधन है।

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मामृतम् गमय।

मूर्त्ति-पूजा तथा श्रीमद् भागवत और अष्टाध्यायी

श्री डा० हरिदत्त जी शास्त्री, एम. ए., पी. एच. डी.
उपकुलपति गु. कु. महाविद्यालय ज्वालापुर

मूर्त्ति पूजा शब्द सिद्ध करता है कि पूजा मूर्त्ति की होती है, किन्तु मूर्त्तियाँ सब ही भौतिक होती हैं। अभौतिक मूर्त्ति हो इसका न प्रमाण है न यह बात युक्ति सिद्ध है–क्योंकि परमात्मा का तटस्थ लक्षण संसार का उत्पादक-अवस्थापक तथा विनाशक होता है, इसीलिये उसे कवि गण :—

'नमामि जगदुत्पत्ति स्थिति संहार हेतवे।
सेतवेऽथभवाम्भोधेः वेद विज्ञान केतवे ।।

इत्यादि पदों से बन्दना करते हैं। पर प्रभु का स्वरूप लक्षण–सच्चिदानन्द स्वरूपता है। इस लक्षण में सत्-चित्-या आनन्द के साथ भौतिकता का मेल नहीं बैठता। विचारिये कि सत् किसे कहते हैं—उत्तर होगा कि तीनों कालों में जिसकी सत्ता हो वही 'सत्' है। ऐसी अवस्था में भौतिक या मूर्तिमान् पदार्थ उत्पत्ति से पूर्व और उत्पत्ति के बाद अवस्थित न रहने के कारण 'त्रिकालाबाध्य' नहीं हो सकता।

यदि कहा जाय कि परमात्मा की सावयव मूर्त्ति नहीं किन्तु 'निरवयव' भौतिक मूर्ति है तो वह परमाणु रूप होगी, क्योंकि परमाणु भौतिक और निरवयव है, वैसा ही परमात्मा भी होगा तो परमाणु की तरह एक देशी या परिच्छिन्न परिमाण वाला होने से एक देशी होगा फिर इस अनत ब्रह्मण्ड की प्रत्येक क्रिया पर उसका अधिकार कैसे हो सकता है। यदि कहा जाय कि भौतिक, निरवयव प्रभु अपनी ज्ञानशक्ति से कोटि ब्रह्माण्डों पर समुद्र की तत्ववर्ती सीमा पर एवं पर्वत की चोटियों एवं तदन्तवर्ती चोटियों पर अधिकार रखता है- एवं ज्ञान से सर्वद्रष्टा है तो यह भी युक्ति संगत नहीं, क्योंकि परिच्छिन्न की अपरिच्छिन्न शक्ति या ज्ञान होने में न प्रमाण है, नदृष्टान्त न युक्ति। उपन ! सत् स्वरूप प्रभु को मानते हुए उसे मूर्ति या आकार से रहित ही मानना होगा-भगवान् की अभौतिक सर्व व्यापक मूर्ति है। ऐसा कहते हुए वदतो-व्याघात है। अतः सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् दिग देश सीमा बद्ध नहीं हो सकता न उसकी मूर्ति ही हो सकती है। फिर उसकी पूजा कैसी ?

दूसरी बात यह है कि प्रभु अपनी पूजा चाहता भी नहीं क्योंकि साधारण मनुष्य भी अपनी प्रशंसा या पूजा से हिच-कते हैं, फिर प्रभु पूजा चाहने लगा, आजकल गांधी शताब्दी चल रही है, महात्मा गांधी अपने नाम के आगे 'महात्मा' शब्द जोड़ने में हिचकिचाये थे, नागपुर में हुए काँग्रेस महा-

समिति के अधिवेशन में प्रस्तुत एक प्रस्ताव पर मुहम्मद अली जिन्हा साहब बोलने के लिए खड़े हुए और उन्होंने कई बार कहा कि 'मिस्टर गांधी' 'मिस्टर गांधी' इस पर प्रतिनिधियों ने एवं सदस्यों ने आपत्ति उठाई तब महात्मा गांधी जी एकदम खड़े हो गये और कहने लगे।

"I am not a mahatma. I am an ordinary man. By coercing ginnab saheb to a particular choice of word you are not doing me hon our. We cannot win real freedome by forcing our viewes upon others.

इत्यादि, अतः समझदार गम्भीर पुरुष पूजा से घृणा करते हैं-तब सर्वशक्तिमान् की पूजा की तो बात ही क्या ? अतएव किसी कवि ने कहा है कि :—

अद्यापि दुर्निवारं स्तुतिकन्या वहतिकौमारम् ।
सद्भ्यो न रोचते साऽसन्त स्तस्यै न रोचन्ते ।।

अर्थात्—पूजा या स्तुतिरूपी कन्या अभी तक कुमारी ही है-उसकी शादी नहीं हुई क्योंकि वह जिन्हें पति बनाना चाहती है वे सज्जन उसे (पूजा नामक कन्या को) पसन्द नहीं करते। तथा जो असज्जन व्यक्ति पूजा नामक कन्या को चाहते हैं उन असज्जनों को वह कन्या नहीं चाहती। इस प्रकार पूजा या स्तुति नाम की कन्या आज भी अविवाहित ही है। अतः स्पष्ट है कि 'मूर्ति पूजा' शब्द प्रभु पूजा में संगत

नहीं। पाठक कहेंगे कि तब तो ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना उपासना सब व्यर्थ है ? नहीं इसका उत्तर ऋषिदयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में देते हैं कि:-

"स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहायता मिलना, उपासना से पर ब्रह्म से मेल और उसका सामान्कार होता है। इसलिये ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना अवश्य करनी चाहिए। इससे आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी घबड़ायगा नहीं। क्या यह छोटी बात है। और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न और महा मूर्ख है······क्योंकि उसके गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।" इत्यादि।

अतः ईश्वर में मूर्त्ति पूजा शब्द संघटित नहीं होता। अब आप पूछेंगे कि फिर यह मूर्त्ति पूजा क्यों चली ! इसका उत्तर पाणिनि व्याकरण और भागवत दोनों इस प्रकार देते हैं-"जीविकार्थे चापण्ये" ५-३-९९ अष्टाध्यायी क्या यह सूत्र है इसका अर्थ है कि पेट पालने के लिए जो मूर्त्तियाँ बनाई जायें उनसे किए गये 'कन्' प्रत्यय का लुप् हो। अतः कल्पित मूर्त्तियाँ अज्ञानियों ने अपने जीविका के लिए बनाली थीं। ऐसी मूर्त्तियों को दिखाकर जो पैसा बटोरते थे वे देवल या देवलक कहलाते थे-क्योंकि मूर्त्ति को वे साक्षात् शिव का

स्वरूप कहते थे अतः पाणिनि ने प्रति कृति अर्थ के द्योतक 'कन्' का लुप् करके उसे 'शिवक' की जगह 'शिव' ही बना दिया। काशिकाकार एवं तत्वबोधिनी कार दोनों ही लिखते हैं कि :—

"याः प्रतिमाः प्रतिगृह्य गृहाद् गृहं निक्षमाणा अटन्ति, ताएव मुच्यन्ते। देवलका अपि तएव भिक्षवोऽभिप्रेताः।" इति। अर्थात् भिक्षुक लोग घर-घर जाकर जिन प्रतिमाओं को दिखाते थे वे प्रतिमाएँ शिव आदि के नाम से पुकारी जाती थीं। वहीं यह सूत्र लगता है जो मूर्त्तियाँ मन्दिरों में रक्खी जाती थीं उनसे उत्पन्न 'कन्' प्रत्यय का देव पथादिभ्यश्चय (५।३।१००) से लुप् होगा। लिखा भी है–

अर्चासु पूजनार्हासु चित्र कर्म ध्वजेषच।
इवे प्रतिहतौ लोपः कनो देव पथादिषु। इति।'
'समं सीनां लक्षमणं जीविकार्थे विक्रीणीने यो नर स्तं च धिकं धिकं।
आस्मिन् पद्येयोऽप शब्दं न वेत्ति व्यर्थ प्रजं पण्डितं तवं धिकं धिकं। इति।

अतः यह मूर्त्ति पूजा पाणिनि के समय ईसा से ५०० वर्ष पूर्व खूब चल पड़ी थी तब ही पाणिनि को इसका प्रचार देखकर सूत्र निर्माण भी करना पड़ा। इसका कारण अज्ञान, और अर्थार्जन ही था। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत् में भी लिखा है कि :—

दृष्ट्वा तेषां किथो नृणा मवज्ञानात्मतां नृप ।
त्रेतादिषु हरे रर्चा क्रियायै कविभिः कृता ।। ७।१४।३९
ततोऽर्चायां हरिं केचित्, संश्रद्धाय सपर्यया ।
उपासने उपास्नाऽपि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ।।४०।।
पुरुषेष्वथि राजेन्द्र! सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ।
तपसा विद्ययातुष्ट्या धत्रे वेदं हरेस्तनुम् ।।४१।।

(भागवत् ७ मस्कन्धा १४ अध्याय ३९-४१)

यहाँ युधिष्ठिर एवं नारद का संवाद चल रहा है, वहाँ पूजा के योग्य सर्व श्रेष्ठ पात्र कौन है, इसका उत्तर नारद देते हैं कि सर्व व्यापक प्रभु का द्रष्टा कृष्ण ही पूजा के योग्य हैं। इसलिये ज्ञानी आत्मा ही सर्वोत्कृष्ट पात्र है, किन्तु अज्ञानियों ने भगवान् की मूर्ति बना डाली है जो केवल भरण-पोषणादि क्रिया के लिए ही रह गई है। सर्वोत्तम भगवान् की मूर्ति वेद वेत्ता ब्राह्मण ही है। वे ही देव हैं—लिखा भी है 'विद्वाँ ऽ सोहि देवाः' आत्मज्ञानी विद्वान् ही देवता हैं। इस कथन से भी सिद्ध है कि मूर्ति पूजा अज्ञानियों के लिए है, वस्तुतः व्यापक भगवान् का प्रत्येक वस्तु में दर्शन करना ही भगवत् पूजा है, उक्त कथन से यह भी सिद्ध होता है कि पाणिनि काल में शिल्पशाला भी चरमसीमा पर पहुंच गया था—वही हाल भागवतकार के समय में भी था। अतः मूर्ति पूजा तब से चली और यह मूर्खों के बहकावे और समझदारों के अर्थोपार्जन का साधन बन गई। इससे और भी असर

न तस्य प्रतिमा अस्ति

[राजा रणञ्जयसिंह विद्यारत्न एम. एल. ए. अमेठी राज्य]

दिग्विजय करके महर्षि दयानन्द जी ने,

शतवर्ष पूर्व कहा वेद का विचार है।

कभी भी हिरण्य गर्भ, गर्भ में आता नहीं,

लेता अवतार नहीं, अज निराकार है।

ईश सर्वव्यापक है, प्रतिमा न अस्ति तस्य,

जड़ के पुजारी के सन्मुख अन्धकार है।

एक सर्वज्ञ की उपासना 'रणञ्जय' हो,

जो अजर-अमर है, सबका आधार है॥

विचार, मिथ्याचार, अनाचार फैल गये जिसके कारण ऋषि दयानन्द को 'मूर्ति पूजा' विषयक शास्त्रार्थ करके तत्कालीन पण्डित वर्ग की आँखें खोल दीं थी। वस्तुतः तो—'भावेहि विद्यते देव स्तस्माद् भावोहि कारणम्' इस उक्ति के अनुसार भावों की उत्कृष्टता, पवित्रता, ईश्वर स्मरण शीलता रूप में परिणति ही असली ईश्वर की अर्चना या पूजा है।

मूर्त्ति पूजा से राष्ट्र-क्षति

[श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा सिद्धान्त वाचस्पति एम०ए०
डी-लिट्, अजमेर

जैसा कि ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के ११ वें समुल्लास में लिखा है। मूर्त्ति-पूजा का प्रचलन भारत में बहुत प्राचीन नहीं है। बौद्ध और जैन धर्म के उद्भव के साथ ही भारत में मूर्त्ति-पूजा प्रचलित हुई, और फिर हिन्दु-सनातनियों में भी उसका प्रचार होता गया। पुराण कर्त्ताओं ने अपने-अपने देवताओं की मूर्त्ति का निर्माण कराके उसकी पूजा का माहात्म्य इतना बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया कि साधारण हिन्दू जनता उसमें बहक गई—और तो और लङ्का विजय के पश्चात् राम के द्वारा भी रामेश्वर में शिवलिंग की स्थापना का भ्रान्त वर्णन कर इसकी पूजा के अम्बार बाँध दिये। जब यजुर्वेद में स्पष्ट शब्दों में "नतस्य प्रतिमा अस्ति" [यजु० ३२-३] कहकर मूर्ति-पूजा का निषेध किया गया है, फिर मूर्ति-पूजा का विधान कैसा ?

जड़-पूजा का ईश्वरीय ज्ञान वेद में स्पष्ट निषेध होने पर भी तथा आत्मा का पतन एवं जड़ता का प्रवेश मूर्ति-पूजा के द्वारा होने पर भी जो लोग उसे करते हैं, वे 'देवी

भागवत' के अनुसार मृत्यु के उपरान्त निकृष्ट योनियों में तो जाते ही हैं, साथ ही इस जन्म में भी कोई विशेष सुख की उपलब्धि नहीं कर पाते और अपने इस कुकृत्य से राष्ट्र को भी हानि पहुंचाते हैं। जैसा कि निम्नांकित ऐतिहासिक उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा :—

(१) आर्थिक क्षति

देश में लाखों करोड़ों रुपयों के व्यय से सैकड़ों मन्दिरों तथा मूर्तियों का निर्माण और सहस्रों रुपयों का दैनिक चढ़ावा राष्ट्र की सम्पत्ति का नितांत अपव्यय है। इन धन राशियों से राष्ट्र में अनेक विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय चलाये जा सकते हैं। अनेक छोटे-बड़े उद्योगों का संचालन किया जा सकता है, जिनसे राष्ट्र की प्रगति अत्यन्त तेज की जा सकती है।

(२) मन्दिरों का विध्वंस और लूट

हमारे देश में सदियों से होती रही। विदेशी आक्रान्ताओं के लिये हमारे मन्दिर एवं उनमें स्थापित रत्नजटित मूर्त्तियाँ निरन्तर आकर्षण का केन्द्र बनी रहीं। सिन्ध में राजा दाहर के समय देवी के मन्दिर की घटना से मुहम्मद बिन कासिम की विजय, सौराष्ट्र में सोमनाथ के मंदिर से मूर्ति का भंजन कर महमूद गजनवी के द्वारा करोड़ों रुपये के हीरे, पन्ने तथा स्वर्ण आभूषणों का लूट कर ले जाना, तैमूर नादिरशाह

आदि द्वारा भी मन्दिरों की लूट, राष्ट्र की अपार क्षति का कारण बनती रही है ।

(३) राष्ट्र का अपमान

जब महमूद गजनवी सोमनाथ के मन्दिर की मूर्ति को खण्ड-खण्ड करके उसके टुकड़ों को साथ ले गया तो उन टुकड़ों को महमूद ने गजनी की मस्जिद की सीढ़ियों पर लगवाया ताकि नमाज अदा करने वाले मोमिन उन पर पैर रख कर चलें । इसी प्रकार औरंगजेब ने काशी के विश्वनाथ मन्दिर तथा अयोध्या, वृन्दावन आदि में मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदें खड़ी करादी । मूर्तिपूजकों के लिये यह बड़ी लज्जा की बात रही ।

(४) आज तक इतिहास में कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जिससे सिद्ध हो कि मूर्ति पूजा से राष्ट्र-के सम्मान का संवर्धन हुआ हो । सिवाय हानि के लाभ कोई भी कभी नहीं हुआ ।

मूर्ति - पूजा राष्ट्र का,
कल्याण कुछ करती नहीं ।
अपमान का धन हानि का,
कारण सदा बनती रही ॥

★

मूर्त्ति पूजा विषयक-
आर्य सामाजिक साहित्य

(संग्रहकर्त्ता-श्री डा० भवानीलाल जी भारतीय एम० ए०
पी-एच-डी०, दयानन्द आश्रम, अजमेर)

१-मूर्ति पूजा मीमांसा-प्रकाशक स्वामी प्रेस, मेरठ

२- ,, ले०- पं० बुद्धदेव मीरपुरी
आर्य साहित्य विभाग, लाहौर सं० १९९४ वि०

३-भारत में मूर्ति पूजा—ले० पं० राजेन्द्र जी
सौरभ प्रकाशन, दिल्ली

४— ,, ,, दर्शनानन्द ग्रन्थागार,
मथुरा २०१४ वि०

५—मूर्ति पूजा विचार—ले० श्री चिम्मनलाल वैश्य तिलहर

६— ,, ,, पं० शिव शर्मा
शर्मा आर्य पुस्तकालय, सम्भल पु. सं. १५

७— ,, (सत्यार्थ प्रकाश से उद्धृत)
वेद प्रकाश माला, गो० हा० दिल्ली ३२

८—ब्राह्मण समाज और मूर्ति पूजा-ले० पं० राजेन्द्र
वेदप्रकाश माला गो०हा० ३२

९—आर्यसमाज में मूर्ति पूजा ध्वान्त निवारण-ले० पं०

शिवपूजनसिंह कुशवाहा, रुद्र ग्रन्थ माला १२

१०–मूर्त्तिपूजा–ले० पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय

आर्यसमाज चौक, प्रयाग २७

११–मूर्त्ति पूजा खन्डन—स्वा० दर्शनानन्द सरस्वती

वैदिक पुस्तकालय, लाहौर

१२—मूर्ति पूजा समीक्षा-पं० भूमित्र शर्मा

भास्कर प्रेस, मेरठ १९७४ वि०

१३–मूर्ति प्रकाश–पं० लेखराम आर्य मुसाफिर

(मुसाफिर ग्रन्थावली में)

१४–मूर्त्ति पूजा विवेचन—पं० शिव शर्मा

१५—मूर्ति पूजा प्रकाश समीक्षा-पं० तुलसीराम स्वामी

स्वामी प्रेस मेरठ १९५७ वि०

१६–मूर्ति पूजा विचार (सत्यार्थ प्रकाश से)

वैदिक पुस्तकालय, कलकत्ता

१७–मूर्ति पूजा खण्डन (उर्दू) मास्टर लक्ष्मण

वैदिक पुस्तकालय, आ.स. बिरला लाइन्स दिल्ली

१८—प्रतिमा पूजन निषेध–[नौटङ्की]

आर्यकुमार सभा, इटावा

१९–मूर्ति तत्त्व–स्नातक सत्यव्रत वेद विशारद [गुजराती]

२०–मूर्ति पूजा विचार–[हिन्दी·उर्दू] पं० बाबूराम शर्मा

आर्य पुस्तकालय, इटावा

२१–सत्य भास्कर–[दोहा चौपाई में मूर्ति पूजा खण्डन]

मूर्त्ति पूजा के समर्थन में लिखा गया सनातन धर्मियों कासाहित्य

१–मूर्त्ति पूजा–साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास

२–मूर्ति रहस्य–३ भाग पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव
संस्कृत पुस्तकालय, मेरठ

३–मूर्ति पूजा मण्डन—पं० ब्रह्मदेव मिश्र, ब्रह्म प्रेस, इटावा

४–मूर्ति पूजा--पं० कालूराम शास्त्री, कानपुर
धर्मोपदेशक ग्रन्थ माला-४, ५, ६

–हे मनुष्यो ! यह (विराट् पुरुष) सम्पूर्ण दिशाओं में पूर्ण से व्याप्त है, वही सबके भीतर व्याप्त है। वह ही पूर्ण-से व्याप्त है, वही सवके भीतर। वह ही पूर्वकल्प में (विराट् रूप से) प्रसिद्ध था तथा भावी कल्प में भी वही प्रसिद्ध होगा। वही सर्वप्रमुख होकर अन्तर्यामीरूप ले विराजमान रहता है।

–जिससे पहले कोई भी वस्तु प्रादुर्भूत नहीं हुई, जो समस्त भुवनों को अधिकार में रखता है, वह सोलह कला वाला विराट्रूप प्रजापति परमेश्वर सृष्टि के साथ रमता हुआ अग्नि-विद्युत्-सूर्यरूप तींन ज्योतियों को समन्वित करता है।

—जिसका नाम मही यशस्वी है, उसकी प्रतिकृति नहीं है।

मूर्त्ति-पूजा और उपनिषद्-ग्रन्थ

[श्रीमती डा० कमला प्रधान एम० ए०, एच० एम०डी०]
सि० शास्त्री

मूर्ति-पूजा का विधान और उपनिषद् ग्रन्थों का ज्ञान-मय आदेश इन दोनों का संबंध ठीक वैसा ही है जैसा अन्धकार और प्रकाश का। जैसे प्रकाश के होते अन्धकार का लोप हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मानन्द प्राप्त करने तथा प्रभु दर्शन पाने के लिये जो ज्ञान उपनिषदों में मिलता है उसमें मूर्ति-पूजा बाधक ही कही गयी है। उसमें उसका विधान कहीं नहीं है।

एक बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि यहाँ उपनिषद्-ग्रन्थों से तात्पर्य केवल उन प्रामाणिक उपनिषदों से है, जिनको महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्ष ग्रन्थों में माना है। तथा स्वामी शंकराचार्य जी ने मान्यता दी है। वे प्राचीन उपनिषद्—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ठक, माण्डूक ऐतरेय, तैत्तरीय छान्दोग्य आदि हैं। जिनमें वेद के उन भागों की व्याख्या है, जिसमें परमात्मा के शुद्ध स्वरूप तथा उसके प्राप्त करने के साधनों का वर्णन है।

परम पुरुष ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या करते हुये ईशो-

पनिषद् कहता है–

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्
अस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयं भूः
याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥
॥ ईश. मन्त्र ८ ॥

वह परमात्मा सर्वव्यापी है । शरीरधारी नहीं है । उसमें किसी प्रकार के घाव भी नहीं है । वह नस-नाड़ियों के बन्धन से रहित है । पवित्र है, पापों से न बँधने वाला है । ज्ञानी है, मन के भावों को जानने वाला है । अत्यन्त सूक्ष्म रूप से सब में व्यापक है, अजन्मा है और उसने सदा रहने वाले जीवों के लिये वस्तुओं के गुणों का ठीक-ठीक उपदेश (वेद-ज्ञान द्वारा) किया है ।

यहाँ स्पष्ट कहा है कि वह अकाय है अर्थात् शरीरधारी नहीं है तो उसकी मूर्ति बन ही कैसे सकती है, मूर्ति अथवा प्रतिमा का अर्थ होता है, ठीक असली वस्तु के अनुरूप । अतः मूर्ति तो किसी सीमाबद्ध सांसारिक पदार्थ, प्राणी अथवा महापुरुष की ही हो सकती है । उस अलौकिक अनादि अनन्त अति-सूक्ष्म की प्रतिमा बनाना इन स्थूल अनित्य पदार्थों की सामर्थ्य के बाहर है । इसीलिये उसको दिव्य अलौकिक व अद्वितीय कहा है ।

ऋषि कहते हैं :–

दिव्योऽमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः ॥

मुण्ड. २ । १ । २४ ।

वह प्रकाश स्वरूप परमात्मा निश्चय ही मूर्ति से रहित सब में व्यापक है । वह बाहर-भीतर विद्यमान् है । अजन्मा है । पञ्चतत्त्वों से बने प्राण व मन से रहित शुद्ध है । वह नाश रहित कारण प्रकृति से भी सूक्ष्म और जीवात्मा से भी सूक्ष्म परमात्मा है ।

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि परमात्मा की मूर्ति नहीं बन सकती । वह अपनी तरह का अकेला है और सबको नियन्त्रण में रखने वाला है अतः प्रत्येक मूर्ति का स्वामी अवश्य है ।

हम उपासना व आराधना इसलिये करते हैं, जिससे हमारा कष्ट निवारण हो, दुःख से छुटकारा मिले और आनन्द की प्राप्ति हो । शीतकाल में हम धूप का सेवन करते हैं, या आग के पास बैठते हैं । जिससे हमारी जाड़े की ठिठु-रन दूर हो और सुख मिले । ग्रीष्म-ऋतु में ठन्डे कमरे में पंखे की हवा का सेवन करते हैं, जिससे सुख मिलता है । भगवान् की उपासना भी हम इसलिए करते हैं, जिससे हमें सांसारिक दुःखों व झंझटों से छुटकारा मिले ।कुछ सुख मिले कुछ शान्ति मिले । यदि हम अपना दुःख दूर करने के लिये ऐसे देवता की उपासना करें जो स्वयं दूसरे के वश में है और जिसमें स्वयं कोई शक्ति नहीं कि वह स्वतन्त्र रूप से हमें

आनन्द दे सके, तो हमारी उपासना व्यर्थ जायगी। इसी भाव को समझते हुये केनोपनिषद् में एक आलंकारिक कथा आती है--

ब्रह्म ने पञ्च भूतों (अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, जल व पृथ्वी) की तथा उनके ग्रहण वाली पांच इन्द्रियों की रचना की। नेत्रों को तेज प्रकाश व सौन्दर्य देखने की शक्ति दी वायु को ग्रहण करने के लिये स्पर्शेन्द्रिय त्वचा को शक्ति आकाश में हुये शब्द को ग्रहण करने के लिये श्रवणेन्द्रियको शक्ति दी। जिह्वा को जल का रसास्वादन करने की शक्ति तथा पृथ्वी का ज्ञान नासिका को घ्राण शक्ति देकर दिया, अब इन पाँचों देवों को अपने गुण व शक्ति का बड़ा गर्व हो गया। जब ये देव अपने-अपने गर्व में मग्न थे, तो उनके सम्मुख एक यक्ष प्रकट हुआ। इस तेजस्वी यक्ष को ये देव आश्चर्य से देखने लगे। इन देवों ने अग्निदेव से प्रार्थना की–हे जातवेद अग्निदेव ! यह यक्ष कौन है ? इसका पता लगाइये।

अग्निदेव यक्ष के सामने पहुंचे तो यक्ष ने पूँछा–आप कौन हैं ?

अग्निदेव ने कहा–मैं अग्नि हूं और प्रत्येक वस्तु के रूप को प्रकाशित करने की सामर्थ्य रखता हू।

यक्ष ने पूछा–आपमें क्या शक्ति है ?

अग्निदेव बोले—मैं प्रत्येक वस्तु को भस्म कर सकता हूँ।

यक्ष ने एक तिनका सामने रख दिया और कहा–'जरा इसे जला दो।'

अग्निदेव ने पूरी शक्ति लगा दी पर वह किसी प्रकार तिनके को जला न सके।

फिर देवों ने वायुदेव को यक्ष का पता लगाने का कार्य सौंपा। वायुदेव जब यक्ष के सम्मुख पहुंचे तो यक्ष ने उनसे पूँछा–आप कौन हैं।

वे बोले–मैं आकाश में बहने वाला वायु हूं।

यक्ष ने पूंछा–आपकी क्या विशेषता है?

वायुदेव बोले–मैं संसार की सब वस्तुओं को उड़ा सकता हूं।

यक्ष ने उनके सम्मुख वही तिनका रख कर कहा–

जरा इसे उड़ा दो।

वायुदेव ने सारी शक्ति लगा दी, किन्तु वे उस तिनके को हिला भी न सके।

जब सब देवता हार गये तो उन्होंने इन्द्रदेव से कहा–हे मघवन्! आप ही पता लगाइये कि यह यक्ष कौन है।

जब इन्द्र यक्ष के सम्मुख आये तो वह यक्ष अन्तर्धान हो गया। तब उसी आकाश में स्वर्ण भूषणों से सुसज्जित एक सुन्दर स्त्री प्रकट हुई। इन्द्र ने पूंछा–क्या आप बता सकती हैं कि यह तेजस्वी यक्ष कौन है।

वह बोली–यह ब्रह्म है। यह इसी ब्रह्म का कौशल है,

जो प्रकृति के अणु-अणु के गुण को समझ कर इन पञ्च भूतों तथा उनको ग्रहण करने वाली ज्ञानेन्द्रियों को विशेष-विशेष शक्ति से सम्पादित किया है। यह ब्रह्म की विजय है जो इन जड़ देवों को अपनी-अपनी शक्ति दी है।

इन्द्र ने उस हेमवती नारी की सहायता से जाना कि यह तेजस्वी यक्ष ब्रह्म है और यही उपासना के योग्य है।

यहां इन्द्र जीवात्मा है जो अपनी नेत्रादि इन्द्रियों द्वारा बाहर जगत् में उस विचित्र शक्तिमान् यक्ष अर्थात् ब्रह्म के दर्शन पाने की चेष्टा करता रहा, परन्तु असफल रहा। जब उसने जड़ देवताओं इन्द्रियों आदि का सहारा छोड़ कर अपने हृदयाकाश में उसकी खोज की और उसे ज्ञाना भूषणों से सुसज्जित बुद्धि रूपी नारी का सहारा मिला तब उसे परमात्मा के दर्शन मिले। वह स्वयं उसके प्रकाश से प्रकाशित हो उठा। और उसे ज्ञान हुआ कि यही सर्वशक्तिमान् ब्रह्म उपास्य देव हैं। उसी की भक्ति करने से दुःखों से छुटकारा मिल सकता है।

इस कथा द्वारा गुरु ने शिष्य को उपदेश दिया कि चेतन ब्रह्म की शक्ति से सब भौतिक जड़ देवता शक्तिशाली बने हुये हैं। प्राकृतिक पदार्थ स्वयं कुछ सामर्थ्य नहीं रखते। अतः उनकी उपासना ब्रह्मानन्द प्राप्ति के लिए व्यर्थ है। हाँ इतना अवश्य है कि इन पदार्थों के गुणों को समझ कर इनसे सुख व आराम के साधन एकत्र किए जा सकते हैं।

किन्तु आनन्दातिरेक प्राप्ति के लिए ब्रह्म की उपासना ही एकमात्र साधन है। मूर्तिपूजा अथवा प्रकृति-पूजा का निषेध करते हुए उपनिषद् बार-बार कहता है–

'यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षुंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदि दमुपासते॥ केन. ६॥

जो ब्रह्म न स्थूल आंखों से देखता है और न आँखों से देखा ही जाता है, परन्तु जिसके नियम से शक्ति पाकर आँख देखती है उस शक्ति को देने वाले को तू ब्रह्म जान। जिन आँखों से देखने योग्य वस्तुओं की मनुष्य उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है।

कठोपनिषद् में नचिकेता तथा यमाचार्य के आख्यान में भी यही बताया है कि उस सूक्ष्मतम परमात्मा का साक्षात्कार करने और अमृतत्व का आनन्द पाने के लिये पहले अपनी इन्द्रियों को बाह्य-जगत् से समेटना होगा फिर अपने हृदय में ही ध्यान लगाकर परमानन्द को देखा जा सकता है–

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा,
एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं ये ऽनुपश्यन्ति धीरा–
स्तेषाँ सुखं शाश्वतं नैतरेषाम्॥
कठो० २।१२।१२॥

वह परमात्मा एक है अद्वितीय है। सबको अपने नियं-

व्रण में रखता है। सब प्राणियों और वस्तुओं में रहने वाला है और एक कारण-रूप प्रकृति को भिन्न-भिन्न रूप देता है। जो बुद्धिमान् पुरुष अपनी आत्मा में स्थित उस परमात्मा को अपने भीतर ही देखते हैं, उन्हीं को शाश्वत् सुख प्राप्त होता है, दूसरे को नहीं।

यहाँ 'न इतरेषाम्' शब्द पर ध्यान दीजिये जिसका अर्थ है जो दूसरी जगह परमात्मा को खोजते हैं उन्हें सदा रहने वाला सुख नहीं प्राप्त होता।

यह माना कि परमात्मा सर्वव्यापक होने के नाते मूर्ति में भी विद्यमान है किन्तु उस स्थूल प्रस्तर-खण्ड में वह सूक्ष्म परमात्मा ऐसे ही छिपा रहता है जैसे तिलों में तेल। जब तिल को कुचलकर कोल्हू में पेरा जाता है तब कहीं तेल का दर्शन होता है, इसी प्रकार जब स्थूल पदार्थों के बाहरी रूप रंग की उपेक्षा करके तथा इन्द्रियों का दमन कर भीतर ही योग लगाया जाता है तभी परमात्मा से आत्मा का संयोग होता है।

'अंगुष्ठ मात्रः पुरुषो ज्योति रिवाधूमकः।
ईशानो भूत भव्यस्य स एवाऽद्य स उ श्वः॥

—कठ ४-१३-८४

अँगूठे के बराबर (हृदय) स्थान में जीवात्मा को परमात्मा के दर्शन शुभ्र और धूम्र रहित ज्योति के रूप में होते हैं। वह सर्व व्यापक ब्रह्म भूत काल की और भविष्य में होने वाली सब वस्तुओं का स्वामी है। वह आज भी है और कल भी रहेगा।

इसी प्रकार प्रश्नोपनिषद् में ब्रह्म-विद्या के जिज्ञासु शिष्य सुकेशा ने पिप्पलाद ऋषि से पूछा–

भगवन् ! वह सोलह कला वाला पुरुष कहां है !

उत्तर में ऋषि कहते हैं–

'इहैवान्तः शरीरे सोम्य ! स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्ति । ठा प्रश्न २-६१

हे प्रिय शिष्य ! इसी मनुष्य शरीर में वह सोलह कलाओं से युक्त तथा उनको उत्पन्न करने वाला परमात्मा है और उनसे काम लेने वाला जीवात्मा है ।

ये सोलह कलाएं उस पुरुष में ऐसी जुड़ी हैं जैसे पहिये के आरे उसकी नाभि में जुड़े रहते है, उसी जानने योग्य पुरुष को जानो, जिससे मृत्यु की पीड़ा का दुःख न भोगना पड़े । यहां भी अपने शरीर में ही ब्रह्म को देखने का आदेश है । सोलह कला वाला पुरुष बाहर किसी मूर्ति द्वारा नहीं व्यक्त किया गया है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि उस ब्रह्म की उपासना किस प्रकार की जाये । इसका हल बताते हुए यमाचार्य नचिकेता से कहते हैं–

'तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्' ।

हे नचिकेता ! जिस शब्द को सब वेद परमात्मा की प्राप्ति का साधन बताते हैं वह मैं तुम्हें संक्षेप में बताता हूं वह अक्षर 'ओम् है ।

वे फिर कहते हैं–यही ओम् श्रेष्ठ सहारा है, यही सबसे बढ़कर सहारा है और इसी सहारे को जानकर मनुष्य ब्रह्म लोक में सम्मान पाता है।

यहां भी किसी मूर्ति का सहारा लेकर ब्रह्म लोक तक पहुंचने का आदेश नहीं है।

माण्डूक्योपनिषद् भी कहता है–

'ओमित्येतदक्षरमिदँ सर्वं तस्योप व्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। माण्डू .१

'ओम्' ही एक नाश रहित वस्तु है और संसार में जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह सब इसी 'ओम्' की सत्ता का प्रकाश करता है। भूत वर्त्तमान व भविष्यत् सब ओंकार ही है।

'ओ३म्' शब्द तीन अक्षरों के योग से बना है अ+उ+म जितना दृश्य जगत् है जिसे हम जागते में देखते हैं वह उस ब्रह्म की सृष्टि रचना की विराट् शक्ति को व्यक्त करता है। वह 'अ' अक्षर है।

'उ' अक्षर परमात्मा के तैजस् गुणों का प्रतीक है। स्वप्नावस्था में प्राणी अपने अनुभवों और संस्कारों को देखता है वह उस प्रकाश रूप से प्रकाश पाता है। ब्रह्म सबके भीतर रहकर सबको नियमानुकूल चलाता है। यह ब्रह्म की 'तैजस्' शक्ति का द्योतक है।

'म' अक्षर परमात्मा के आनन्द रूप का प्रतीक है वह उसकी प्राज्ञ शक्ति का द्योतक है। जब चेतन आत्मा न

जागते में न स्वप्न में बाह्य जगत् से सम्बन्ध रखता है तब सुषुप्ति-अवस्था में उसका आनन्दमय ब्रह्म से मेल हो जाता है। अतः जीवात्मा अति प्रसन्न हो उठता है। यह ज्ञान स्वरूप आनन्दमय ब्रह्म की असीम शक्ति को प्रकट करता है।

छान्दोग्योपनिषद भी कहता है—

'ओमक्षरमुगीथमुपासीत ।१।

मनुष्य को ओम्' जो नाश रहित है, उसकी उपासना करना चाहिए। इसको 'उद्गीथ' ओम् को सस्वर गाया जाने वाला कहते हैं। ओम् ही परमात्मा के सब गुणों को व्यक्त करने वाला एकमात्र प्रतीक है।

अब लक्ष्य मालूम हुआ तो उपासना की विधि भी जानना चाहिए। यह मुण्डकोपनिषद् बतलाता है—

'धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं,
शरं ह्युपासानिशितं सन्धीयत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा,
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ॥
—मुण्ड० २-२-३

ऋषि कहते हैं—हे प्रिय शिष्य ! उपनिषद के बताये ब्रह्म-ज्ञान रूपी धनुष को जो बड़ा भारी अस्त्र है हाथ में पकड़कर उस पर उपासना-रूपी तीर रखो। और धनुष को खींचकर ब्रह्म के प्रेम में तन्मय होकर 'ओम्' अक्षर को लक्ष्य बनाकर उसे भेदो।

ऐसी ज्ञानमय भक्ति करते-करते आत्मा परमात्मा में मिल जाती है और प्राण अमरत्त्व को प्राप्त हो जाता है। इस उपासना का फल भृगु ऋषि ने जो अनुभव किया उसका वर्णन तैतरीयोपनिषद् में आता है—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजनात्, आनन्दात् ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति इति—य एवं वेद प्रतितिष्ठिति अन्नवानन्नादो भवति महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन महान् कीर्त्या।

—भृगुवल्ली ६

भृगु ऋषि ने जाना कि ब्रह्म आनन्दस्वरूप है। उसी आनन्दस्वरूप की सत्ता से निश्चय ही सब प्राणी उत्पन्न हुये हैं और उसी की सत्ता से जीते तथा अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं। जो पुरुष इस ब्रह्म विद्या को जानता है वह आनन्दमय ब्रह्म ज्ञान में स्थिर हो जाता है। इसके अतिरिक्त वह संसार में बड़ी सम्पत्ति वाला और साथ ही उसका भोग करने वाला भी हो जाता है। उसे संसार में बड़ा गौरव मिलता है, पुत्रादि सन्तान, गौ आदि पशु और साथ में ब्रह्म-तेज और महान् यश प्राप्त होता है।

यहाँ किसी मूर्ति का सहारा लेकर भृगु ऋषि को ब्रह्म ज्ञान नहीं मिला उन्होंने गुरु व पिता महर्षि वरुण के आदेश में तपस्या करके विचारपूर्वक मनन करके ही इस महान् फल का पता लगाया।

उपनिषदों के अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रस्तर-खण्ड निर्मित मूर्ति की पूजा द्वारा स्थूल दृश्य पदार्थों में मन भटकाने से यम नियम-धारण-ध्यानादि का सच्चा मार्ग छूट जाता है और मिथ्या-ज्ञान के भुलावे में संसार के बीहड़ जङ्गल में भटक-भटक कर मनुष्य जन्म-जन्मान्तर में घूमता फिरता अनेक दुःख भोगता है और महान् सुख से वंचित रह जाता है। ईशोपनिषद् कहता है।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इवते तमो यऽसम्भूत्या ँ रताः ॥१३॥

जो मनुष्य कारण रूप प्रकृति को ही सब कुछ समझकर उपासना करते हैं वे अज्ञानान्धकार में फंसकर दुःख भोगते हैं और जो कार्यजगत् मूर्ति धनादि को ही ईश्वर समझकर उपासना करते हैं उनकी बुद्धि जड़-प्रकृति के संसर्ग से बिगड़ जाती है वे और भी घने अन्धकार में फंसकर अधिक दुःख भोगते हैं।

ब्रह्म के सच्चे स्वरूप व सच्चे सीधे साधन को न जान कर जो मनुष्य मिथ्या-ज्ञान के उपदेश करने वालों के पीछे चलते हैं, वे उसी प्रकार दुःख भोगते हैं जैसे–

'अन्धेनैव नीय मानाः यथान्धाः।'

अन्धे को मार्ग बताने वाला अन्धा स्वयं भी गिरता है और दूसरे को भी गड्ढे में गिरा देता है। ऐसे जन अन्धकार मयी एक योनि से दूसरी योनि में भटकते हुये दुःख सागर में

डूबते उतराते रहते हैं। स्थूल पदार्थों की ज्ञान रहित उपासना करने का यह एक भारी दण्ड है जो अनेक जन्मों तक भोगना पड़ता है।

सारांश यह है कि उपनिषदों में स्थूल पदार्थों (मूर्ति आदि) की उपासना का दुष्परिणाम बताते हुये उसका निषेध किया है और वार-वार कहा है कि ज्ञानपूर्वक परब्रह्म की भक्ति करते हुये, कर्त्तव्य-कर्म का ठीक-ठीक पालन करने से इस लोक में बड़े-बड़े सुख और परलोक में अमरत्व प्राप्त होता है।

—जिसने द्युलोक को तेजोमय किया तथा पृथिवी को दृढ़ किया, जिसने आदित्यमंडल धारण किया हुआ है, जिसने मोक्ष को धारण किया हुआ है, जो अन्तरिक्ष में लोकलोकांतरों को निर्माण करने वाला है, उस प्रजापति परमेश्वर की हम भक्तिभाव से उपासना करें।

—मेधावी विद्वान् उस हृदय गुहा में निहित ब्रह्म को देखता है, जिसमें विद्यमान हुआ समस्त जगत् एकाश्रयवाला होकर रहता है। उस ब्रह्म में (प्रलयकार में) यह सब संयुक्त हो जाता है तथा (सृष्टि-काल में) प्रकट हो जाता है। वह विभु परमेश्वर उत्पन्न पदार्थों में ओतप्रोत है।

'मूर्ति-पूजा खाई है सीढ़ी नहीं'

(एक मनो वैज्ञानिक अध्ययन)

[श्री बा० पूर्णचन्द्र जी बी०ए०एल-एल० बी० एडवोकेट]
पूर्व प्रधान सार्वदेशिक सभा, देहली

ईश्वर पूजा और मूर्ति पूजा में क्या सम्बन्ध है, इसको समझने के लिये ईश्वर पूजा की आवश्यकता, ईश्वर पूजा की विधि और ईश्वर के दर्शन से क्या अभिप्राय है, यह समझ लेना आवश्यक है

ईश्वर-पूजा की आवश्यकता

जीव संसार में ज्ञान प्राप्त करने और ज्ञान को उपयोग में लाने, कर्म करने और कर्मों का फल भोगने के लिये जन्म धारण करता है। मानव जन्म ही ऐसा जन्म है जहाँ वह हर प्रकार से अपना उद्देश्य पूरा कर सकता है। जीव, ज्ञान परमात्मा की निमित्त से प्राप्त करता है। विना किसी निमित्त के जीव ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। परमात्मा ही आदि गुरु है। सृष्टि में आदि में ईश्वर के निमित्त से वेदों का ज्ञान चार ऋषियों द्वारा प्राप्त होता है। और उसी वैदिक ज्ञान की सहायता से जीव ज्ञान प्राप्त करता हुआ अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

कर्म और भोग दोनों के लिये ईश्वर के निमित्त से जीव को कर्मों के फल के अनुसार शरीर प्राप्त होता है और वह कर्म उन साधनों के द्वारा ही करता है जो इन्द्रियों और मन के रूप में उसको प्राप्त होता है। इसी प्रकार भोग प्राप्ति के के लिये संसार के रचित पदार्थों की आवश्यकता होती है। और रचना का भी आदि मूल ईश्वर है।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान, कर्म और भोग तीनों की दृष्टि से ईवर को जानना, मानना और उसकी शिक्षा को लक्ष्य में रख कर जीवन निर्वाह करने के लिये अति आवश्वकता है। ईश्वर पूजा की आवश्यकता इसीलिये है कि जीवात्मा का जीवन पूर्ण और सफल हो।

'ईश्वर प्राप्ति से अभिप्राय'

परमात्मा और जीवात्मा में न देश की दूरी है और न काल की। परमात्मा और जीवात्मा दोनों अनादि हैं। परमात्मा सर्व व्यापक है और अन्तर्यामी है। हर समय और हर स्थान पर साथ होते हुये भी जीवात्मा ईश्वर को भूल जाता है। जब वह कर्म करने या भोग प्राप्त करने के अभिप्राय से संसार के सम्पर्क में आता है तो ईश्वर को भूल जाता है। संसार के पदार्थ बड़े रोचक और आकर्षक हैं। ईश्वर और जीव में केवल ध्यान की दूरी हो जाती है। और उस दूरी को दूर करने के लिये ही ईश्वर पूजा, योग,

ईश्वर की भक्ति से ही सम्भव हो सकता है।

जीव का ध्यान किस प्रकार ज्ञान प्राप्त करते समय, कर्म करते समय और योग प्राप्त करते समय सुरक्षित रहे और ध्यान विचलित न हो इसी का नाम ईश्वर पूजा है।

'ईश्वर पूजा की विधि'

संसार में ईश्वर के पूजने की विधियां भिन्न-भिन्न हैं। कोई ईश्वर की मूर्ति बनाकर पूजता है, कोई बिना मूर्ति के ध्यान लगाता है। यदि हमें ईश्वर पूजा की उन सब विधियों का यहाँ उल्लेख करें जो इस समय भिन्न-भिन्न समाजों में प्रचलित हैं तो विषय बहुत बढ़ जायेगा। केवल ईश्वर पूजा के सम्बन्ध में कुछ मौलिक सिद्धातों पर विचार करना आवश्यक है जिससे ईश्वर पूजा की विधि उस उद्देश की पूर्ति के लिये सफल हो सके। वह सिद्धान्त निम्न लिखित हो सकता है। [१] ईश्वर को सर्व व्यापक और सर्व ज्ञाता माना गया है। [२] प्राकृतिक पदार्थों का कमसे कम समावेश हो। [३] मनुष्य का प्राकृतिक पदार्थों से सम्बन्ध उसके शरीर द्वारा स्थापित होता है। अतएव ईश्वर पूजा की विधि ऐसी होनी चाहिये कि मनुष्य ध्यान करते समय भूल सके। और इसके लिये आसन के सम्बन्ध में विचार करना आवश्यक है।

प्राकृतिक पदार्थ बड़े चमकीले आकर्षक होते हैं और वे मनुष्य को आत्मा में अपने चमकीले

पन से अपनी ओर खींचते है । जीवात्मा इनकी ओर खिंच कर भोग वाद के चक्कर में पड़ जाता है । और आदर्श से गिर जाता है । यदि ईश्वर की पूजा के समय भी प्राकृतिक पदार्थ किसी न किसी रूप में उसके सामने रहें तो वह उसके फंदे में कसी रहेगी और तटस्थ होकर ईश्वर सत्ता और उसके गुणों का ध्यान नहीं कर सकेगी । प्राकृतिक पदार्थ चाहे मूर्ति के रूप में हों चाहे अन्य किसी रूप में ईश्वर के ध्यान में अवश्य बाधक होते है । इस स्थल पर एक कवि की कविता उद्धृत करना आवश्यक है :—

'उल्टी ही चाल चलते हैं, आवारे गान इश्क ।
आँखों को बन्द करते हैं, दीदार के लिये ।'

अर्थात् ध्यान को सफल बनाने के लिये आँखों का बन्द करना ही अचूक उपाय है । बहुतों का कहना है कि ईश्वर सर्व व्यापक और सर्व ज्ञाता है वह सब जगह है अतः मूर्ति में भी है, इसलिये हम जहाँ चाहें उसका ध्यान कर सकते हैं यह बात भ्रम मूलक है । ईश्वर सब जगह अवश्य है, परन्तु ध्यान करने वाले की आत्मा तो सब जगह नहीं है, मनुष्य की आत्मा तो मनुष्य के हृदय में निवास करती है और वहाँ ईश्वर का निवास भी है । जहाँ दोनों हैं वहाँ ही साक्षात हो सकता है । ईश्वर की पूजा के लिये न किसी मन्दिर, न किसी मूर्ति की आवश्यकता है । ईश्वर की पूजा

के लिये मन मन्दिर ही एक उचित और पवित्र स्थान है।

इस स्थल पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ईश्वर निरावतार है। उसकी कोई मूर्ति नहीं हो सकती। आज तक मूर्ति पूजने वालों ने भी किसी मूर्ति को ईश्वर की मूर्ति नहीं कहा है। और न ईश्वर का कोई मन्दिर है। जो हैं, ये भिन्न-भिन्न देवी देवताओं के नाम पर हैं। ईश्वर के नाम पर नहीं। जब ईश्वर की मूर्ति हो ही नहीं सकती तो किसी मूर्ति की सहायता से या उसे पूजने से ईश्वर को ध्यान में कैसे सहायता हो सकती है।

'एक आवश्यक विचार'

ईश्वर की पूजा या उपासना से अभिप्राय यह है कि यह ध्यान रहे कि ईश्वर हमारे सामने है, हमारे समीप है और हम उसके समीप हैं।

चित्र या चिन्ह के आधार पर ध्यान करने की विधि इस बात की द्योतक है कि जिसकी याद करनी है वह उपस्थित नहीं है। हमें अपने किसी मित्र या सम्बन्धी के चित्र की आवश्यकता उसी समय होती है जब वह हमारे काल व देश की दृष्टि से दूर हो। यदि सम्मुख है तो चित्र और चिन्ह बिल्कुल अनावश्यक हो जाते हैं। ईश्वर की पूजा की विधि के सम्बन्ध में ऊपर जो विचार किये गये हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर की न कोई मूर्ति है न हो

सकती है और न किसी मूर्त्ति से सहायता प्राप्त हो सकती है।

दूसरे शब्दों में मूर्ति पूजा ईश्वर प्राप्ति में साधक नहीं है बाधक है। सीढ़ी नहीं है खाई है। बहुत से मनुष्य मूर्ति पूजा को ध्यान में सहायक होने के आधार पर उसको साधक या सीढ़ी कहने लगते हैं। यह बात बिल्कुल निराधार है।

'ईश्वर के दर्शन'

ईश्वर के दर्शन का सबसे उत्तम और अचूक साधन योग साधन है। भोग के सम्बन्ध में और योग के साधन के सम्बन्ध में योग के सब अंगों पर विचार करना आवश्क हो जाता है। योग के अन्य साधन अर्थात् आसन, प्राणायाम, धारणा और ध्यान भी बड़े विचारणीय हैं। उन पर इस लेख में विचार न करते हुए केवल समाधि रूपी अंग पर विचार करना ही पर्याप्त होगा। समाधि की ही दशा में ईश्वर के साक्षात दर्शन होते हैं। और यही ध्यान का अन्तिम ध्येय है। इस प्रसंग में योग दर्शन के तीन सूत्र विचारणीय हैं।

[१] योगश्चित्त-वृत्ति निरोधः।
[२] तपाद्रष्टुः स्वरूपेण स्थानम्।
[३] वृत्ति सारूपम् इतरत्र।

[illegible] प्रथम चित्त की वृत्तियों का निरोध और निरोध होने पर देखने वाले जीवात्मा का

अपने रूप में सन्सथान और तदन्तर परमात्म देवके दर्शन अर्थात् परमात्म देव के स्वरूप में जीवात्मा का संस्थान और ईश्वर के दर्शन का ज्ञान होता है। और ईश्वर के साक्षात् हो जाने पर मनुष्य जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। उसको मोक्ष प्राप्ति हो सकती है। उसका जीवन धार्मिक रहता है। जिसके अर्थ और काम दोनों सिद्ध और मर्यादित होते हैं।

इस स्थल पर हम ईश्वर दर्शन के सम्बन्ध में उसके प्रचलित रूप पर भी विचार करना आवश्यक समझते हैं। जब ईश्वर को किसी मन्दिर में उपस्थित समझ कर उसकी पूजा करने के लिये उस मन्दिर में जाते हैं तो उसका अभिप्राय यह होता है कि जब मन्दिर से बाहर ईश्वर से दूर थे। जब दर्शन करके लौटे तो ईश्वर को पीछे छोड़ आये और फिर बाहर निकल कर दुनिया में उलझ गये। ईश्वर को हर जगह और हर समय अपने सम्मुख रखना उसको दृष्य और व्यापक मानना ही ईश्वर पूजा है। इसी का नाम योग है। योगाभ्यास इसी योग की सिद्धि के लिये हैं। आजकल तीर्थ यात्रा बहुत होती है। दर्शक बड़ी-बड़ी दूर बड़े-बड़े कष्ट उठा कर उसके तीर्थ स्थानों और धर्मों में जाते हैं और ईश्वर के दर्शन के लिये जाते है। जाते समय ईश्वर को अपने से दूर समझते हैं और जब लौटते हैं तो पीछे छोड़ आते हैं। और फिर दुनिया में फँस जाते है। इस प्रकार सारा पुरुषार्थ निसफल हो जाता है। ईश्वर की पूजा के सम्बन्ध में सब प्रकार

के भ्रमों का निराकरण करने के लिये ही महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में मूर्त्ति पूजा का प्रबल खण्डन किया है। उसको अनेक दृष्टियों से हानिकारक बताया है और यह सिद्ध किया है कि मूर्त्ति पूजा हर प्रकार से अवैदिक है और यह भी बताया है कि मूर्त्ति पूजा जैनियों और बौद्धों से आरम्भ हुई है, उससे पूर्व उसका कोई स्थान ईश्वर की पूजा के सम्बन्ध में नहीं था, और न हो सकता है।

यह बात भी याद रखनी है कि मूर्त्ति पूजा के लिये जो शब्द यवनों में प्रचलित हैं वह बुतपरस्ती है। यह बुत बुद्ध का बदला हुआ रूप है। इससे भी मूर्त्ति पूजा की नवीनता सिद्ध होती है। ईश्वर की न कोई मूर्ति है और न किसी मूर्ति से ईश्वर के ध्यान में सहायता मिल सकती है। यही इस लेख का सार है।

—परस्पर आह्वान करती हुई रक्षणक्रिया से परस्पर बँधी हुई (तथा ईश्वरीय) विज्ञान से परस्पर कंपित होती हुई द्यावापृथिवी जिसको लक्ष्य करती है, जिसके अधिकार में सूर्य उदित होकर भासित हो रहा है, उस प्रजापति की हम भक्तिभाव से उपासना करें।

काशी-शास्त्रार्थ

[रचयिता-श्री देवनारायण जी भारद्वाज, अलीगढ़]

ऋषि का काशी शास्त्रार्थ समर, है जय गाथा श्रुतिवाणी की
गूंज उठी दिग्विजय दुन्दुभी, ऋषि दयानन्द बलिदानी की ।।।

कार्तिक शुक्ल द्वादशी संवत,
उन्निस सौ छब्बीस छबीला ।
दिन मङ्गल को किया ऋषी ने,
ढांचा अन्धकार का ढीला ।
जन पाखण्डी घोर घमण्डी,
रचते रोज नई थे लीला ।
उनके गढ़ चढ़ किया ऋषी ने,
गुण्डे-गुरुडम का मुख पीला ।

बीते सौ वर्ष हुई जब थी, भव पर जय वेद भवानी की ।
गूंज उठी दिग्विजय दुन्दुभी, ऋषि दयानन्द बलिदानी की ।।

आनन्द - उद्यान माधौ का,
जो हर ओर मनोहारी था ।
काशी नगरी में वहीं टिका,
ऋषि दयानन्द ब्रह्मचारी था ।

घुस पड़ा जहाँ पर एक दिवस,
मानव समूह बहु भारी था।
वहीं व्यवस्था हेतु पधारा,
तब शासन का अधिकारी था।
कोलाहल में पिया हलाहल, पर दान गिरा कल्याणी की।
गूँज उठी दिग्विजय दुन्दुभी, ऋषि दयानन्द वलिदानी की॥

एक ओर पौराणिक जग के,
जुड़ गए पुजारी पण्डित थे।
सम्पूर्ण देश में विषय-शीर्ष,
पण्डित उपाधि पर दण्डित थे।
तर्क न्याय व्याकरण आदि में,
मस्तिष्क सभी के मण्डित थे।
पर ऋषि के वेद ज्ञान द्वारा,
हो गये सभी वे खण्डित थे।
साथ ज्ञान के हो विवेक भी, थी सीख ऋषी वरदानी की।
गूँज उठी दिग्विजय दुन्दुभी, ऋषि दयानन्द वलिदानी की॥

मूर्ति पूजना श्रुति विरुद्ध है,
ऋषि की अटल घोषणा थी।
है मूर्ति पूजना वेद सिद्ध
अन्यों की यही तोषणा थी।
कर सकी नहीं विद्वान सैन्य,
कोई प्रमाण पोषणा थी।
जब लखा ऋषी का पक्ष प्रबल,
बदले की हृदय दोषणा थी।

धवल धैर्य ध्रुव स्थैर्य सुवल से, मेरो इच्छा अभिमानी की।
गूंज उठी दिग्विजय दुन्दुभी, ऋषि दयानन्द वलिदानी की॥

विपुल विपक्षी दल ने अपनी,
आज पराजय का भान किया।
पतित प्रतिष्ठा का भी अपनी,
मन ही मन में अनुमान किया।
हा-हा-हुल्लड़ कर शोर किया,
फिर घर अपने प्रस्थान किया।
'ज्योति-जवाहर' ने ऋषि-मग से,
अपना जीवन उत्थान किया।

भय-भ्रान्ति मिटा की शान्ति क्रान्ति [illegible] कार्य त कर्म कल्याणी की।
गूंज उठी दिग्विजय दुन्दुभी, ऋषि दयानन्द वलिदानी की॥

सौ वर्ष पूर्व संघर्ष मध्य,
थे एकाकी ऋषि दयानन्द।
फिर भी उस य तम के विरुद्ध,
छेड़ते रहे वे घोर द्वन्द।
हम आज करोड़ों अनुयायी,
आपस में लड़लड़ हुये मन्द।
फिर से चेतो संगठित बनो,
निज करो आर्यो स्वर बुलन्द।

शास्त्रार्थ शताब्दी भरे प्राण, ऋषि शक्ति सम्पदा ज्ञानी की।
गूंज उठी दिग्विजय दुन्दुभी, ऋषि दयानन्द वलिदानी की।

मूर्ति-पूजा का आरम्भ कैसे हुआ ?

श्री शान्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी
जैकमपुरा गुड़गाँव छावनी

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ११ में मूर्ति पूजा का आरम्भ जैनियों से मानते हुए लिखा है कि :—

'ऋषभदेव से ले के महावीर पर्यन्त अपने तीर्थंकरों की बड़ी २ मूर्तियाँ बना कर पूजा करने लगे, अर्थात् पाषाणादि मूर्ति पूजा की जड़ जैनियों से प्रचलित हुई। परमेश्वर को मानना न्यून हुआ, पाषाणादि मूर्ति पूजा में लगे।'

ऋषि दयानन्द ने यह तथ्य विश्वास पूर्वक लिखा है। इस का समर्थन स्वयं पुराणों में विद्यमान है। देवी भागवत् पुराण में तो स्पष्ट ही लिखा है कि :—

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे चकाले,
नत्वां भजन्ति मनुजा ननुवंचितास्ते।
धूर्तैः पुराण चतुरै हरिशंकराणां,
सेवापरश्चविहितास्तव निर्मितानाम् ।। देवी भागवत् पुराण
५।१९।१२

हे ! देवीमातः, घोर कलियुग काल के प्राप्त होने पर मनुष्य तेरी पूजा नहीं करते, वह पुराण बनाने में चतुर धूर्त लोगों द्वारा तेरे बनाए हुए ब्रह्मा, विष्णु, शिव की पूजा चलाकर और उनकी सेवा में तत्पर होकर ठगे गये हैं।

मानना होगा कि घोर कलियुग बुद्ध काल में आया है जो कि महाभारत काल से अर्वान्तर है। जब कि वैदिक धर्म का प्रायः ह्रास हो गया था। तब बुद्ध जैन को देखकर पुराण बनाने में चतुर, धूर्त लोगों ने अपनी पेट पूजा के अर्थ मूर्ति पूज चलाकर आर्यों को वेद मार्ग विहीन करके ईश्वर की सच्ची पूजा से पराङ्मुख किया।

देवी भागवत पुराण में एक कथा के संदर्भ में लिखा है कि :-

देवीं सपूजयामास यत्प्रसादाद्बलोरिपुः ।
पद्मरागमयीं मूर्ति स्थापयामास वासवः ॥
त्रिकालंमहतीं पूजां चक्रुःसर्वे पिनिर्जराः ।
तदाप्रभृति देवानां श्री देवी कुलदैवतम् ॥
विष्णुं त्रिभुवन श्रेष्ठं पूजयामास वासवः ।

देवी भागवत ६।६।६२-६५

इन्द्र ने देवी की पूजा की जिसकी कृपा से शत्रु को मारा। तब इन्द्र ने हीरा पन्नादि से जटित मूर्ति की स्थापना करके यह पूजा की। और सारे देवता भी महलोंमें काम पूजा में व्यस्त हो गये। तब से ही देवी को कुल देवता मानकर उस

की पूजा का प्रचलन हुआ तथा इन्द्र त्रिभुवन श्रेष्ठ विष्णु की भी पूजा करने लगा।

इन्द्र का शत्रु वृत्त है। पुराण कथित इस कथा में उसे बुद्ध कालीन माना गया है। इसका प्रमाण भी इसी पुराण देवी भागवत में मिलता है। जैसा कि लिखा है कि :-

वृत्तंछलेन विशस्तं मुनिभिश्च प्रतारितम्, वेद प्रमाणमुत्सृज्य, स्वीकृतं सौगतं मतम् ॥ देवी भागवत ६।७।२८

वृत्त को छल से काटा गया। मुनियों ने उसे ठगा। और और वेद के प्रमाण को छोड़कर बुद्ध मत को स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार से देवी भागवत प्रमाण की यह साक्षी ऋषि दयानन्द सरस्वती की इस धारणा को पुष्ट करती है कि महाभारत काल के पश्चात् बुद्ध जैन काल में उनको देखकर पुजारियों ने अपने पैसे कमाने के लिये ही मूर्ति पूजा का प्रचलन किया है।

यह भी अकाट्य तथ्य कि पुराणों में यत्र तत्र मूर्ति पूजा से परस्पर विरोध का सेना और मूर्ति पूजा की निन्दा करना भी सिद्ध है जैसा कि भविष्य पुराण में लिखा है कि :-

वासुदेवाग्रतश्च रुद्रमहात्म्य वर्णनम्।
रुद्राग्रे वासुदेवस्यकीर्तनं पुण्यवर्द्धनम् ॥
दुर्गाग्रे शिवसूर्यस्य वैष्णवा ख्यानमेवच।
यः करोति विमूढात्मा गार्दभीं योनिमाविशेत् ॥

भविष्यमहापुराण माध्यम पर्व भाग १ अध्याय ७ श्लोक ३०, ३१

वसुदेव के लड़के कृष्ण के आगे रुद्र महात्म्य का वर्णन, रुद्र के आगे कृष्ण का कीर्तन और पुण्यवर्द्धन, दुर्गा के आगे शिव और सूर्य का तथा विष्णु का यथोगान जो भी मनुष्य करता है वह गधे की योनि प्राप्त करेगा।

शिव लिंग समुत्सृज्य योऽन्यांदेवतामुपासते।
सराजासहदेशेन रौरवंनरकं व्रजेत्॥

भविष्यपुराण उत्तर खंड २।३५

जो शिवलिंग को छोड़कर किसी अन्य देवता की उपासना करता है वह राजा देश सहित रौरव नामक नरक में जायगा।

इस प्रकार से भिन्न-२ पुराणों में अपने देवता को पूज्य और अन्य पुराणोक्त देवताओं को अपूज्य माना है। जिससे आर्य जाति में फूट पड़ गयी और संप्रदायवाद खड़ा हो गया। क्यों न हो। जड़ की पूजा का परिणाम भी जड़ता ही है। देवी भागवत में देवी को पूज्य मानकर शेष सब की निन्दा की है। भागवत पुराण में कृष्ण को पूज्य माना है। शिव पुराण में शिव को पूज्य मान कर ब्रह्मा की गत बनाई है। भविष्य में सूर्य की पूजा मानकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उनका दास बताया है।

इस फूट पिशाचिनी की लीला देखिये कि विष्णु जी बैठे हुए थे, ब्रह्मा जी आ गये और कहा कि :—

प्रमातं गुरुमाराध्यं दृष्ट्वा योऽभिमानमाचरेत् ।
द्रोहिणस्तस्य मूढस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥
शिव पुराण विद्येश्वरी संहिता १ अध्याय ६

आया हुआ गुरु आराधन योग्य है। उसे देखकर जो अभिमान का आचरण करता है। उस द्रोहकारी मूढ़ को प्रायश्चित्त करना चाहिये।

तब विष्णु जी ने कहा कि :—

मन्नाभिकमलाज्जातः पुत्रस्त्वं भाषसेवृथा,

हे पुत्र ! तू मेरी नाभि के कमल से पैदा हुआ है अतः तू (बड़ा बनने की इच्छा से) मिथ्या भाषण कर रहा है। अर्थात् तू तो मेरा पुत्र है। मेरे सम्मुख गुरुपन की डींग मारनी उचित नहीं। तब इसी बात पर दोनों का युद्ध शुरू हो गया और कहने लगे कि :—

अहमेववरो न त्वमहं प्रभुरहं प्रभुः ।
परस्परं हन्तुकामो चक्रतु समरोद्यमम् ॥
शिव पुराण वि० संहिता १ अध्याय ६

मैं ही अच्छा और श्रेष्ठ हूं, तू नहीं, मैं प्रभु हूं, मैं प्रभु हूं, इस प्रकार कहते हुए दोनों ने परस्पर घोर युद्ध करके एक दूसरे का हनन करने लगे तब :—

महानलस्तंभ विभीषणाकृति बंभूव तन्मध्यतले स निष्कलः ॥
शिव पुराण वि० संहिता १ अध्याय ७

बहुत बड़ा अग्नि स्तंभ, विभीषण रूप भारी ज्योतिर्मय

लिंग उनके मध्य प्रगट् हुआ और दोनों उसे ढूंढने गये। विष्णु सूकर बनकर और ब्रह्मा हंस बनकर उसे ढूंढने लगे कि जो इसे ढूंढ लाये, वह श्रेष्ठ माना जाये। जैसा कि लिखा है कि:-

इत्युक्त्वा सूकरतनुर्विष्णुः.............।
तथा ब्रह्मा हंस तनुस्तदन्तं वीक्षितुंययौ ॥
शिव पुराण विद्येश्वर संहिता १ अध्याय ७

यह कहकर विष्णु जी सूकर का शरीर धारण करके ढूंढने गये तथा ब्रह्मा जी हंस बनकर उसका अन्त देखने चल पड़े। तब आकाश में जाते हुए ब्रह्मा ने केतकी पुष्प को देख कर उसे कहा कि तू मेरी गवाही देना। इधर विष्णु जी भी थक कर युद्ध के मैदान में लौट आये थे। तब शिव पुराण वि० संहिता १ अध्याय ७।२५ देखो कि:-

इत्युक्त्वा केतकं प्रणमाम पुनः-पुनः।
असत्यमपि शस्तं स्यादापदि इत्यनुशासनम् ॥

ब्रह्मा ने कहा कि मैंने उस स्तंभ का अग्रभाग देख लिया है केतकी ने गवाही दे दी तब ब्रह्मा जी उस केतकी पुष्प को पुनःपुनः प्रणाम करने लगे। आपत्तिकाल में असत्य भी प्रशंसनीय ही है, ऐसा शास्त्रों का मत है।

हरिश्चतत्सत्यमिति विचिन्त्यंश्चकार तस्मै
विधमेवमः स्वयम्। शिव पुराण वि० १ अध्याय ७।२७

तब विष्णु जी इसे सत्य मानकर स्वयं ब्रह्मा जी से

पराजय स्वीकार करके उसकी पूजा करने लगे तो :—

विधिप्रहर्तुं शठमग्निलिगतः स ईश्वरस्तत्र बभूवसाकृतिः ।
शिव पुराण विष्णु ७।२८,२९

ईश्वर अग्नि लिंग से साकार होकर प्रकट् हो गये और दुष्ट ब्रह्मा को इस असत्य भाषण का दंड देने लगे कि :—

स वैगृहीत्वैक करेणकेशं, तत्पंचमं दृप्तमसत्यभाषणं ।
छित्त्वा शिरांस्यस्य निहन्तुमुद्यतः प्रकपंयन् खड्गमंति स्फुटंकरैः ।। शिव पुराण विष्णु ८।४

ईश्वर अवतार धारी ने हाथ से ब्रह्मा के केश पकड़कर उनके असत्य भाषी पंचम शिर को काट कर शेष शिरों को खड्ग घूमाते हुए काटने का उपक्रम किया ।

तब ब्रह्मा ईश्वरावतार के पांव पड़ा और विष्णु ने छुड़ा दिया । पुनः शिव जी ने यह शाप दिया कि :—

नातस्ते सत्कृतिर्लोके भूयात्स्थानोत्सवादि कम् ।।
शिव पुराण विष्णु ८।१०

तेरी पूजा संसार में उत्सवादि में कदापि न होगी ।

इसी प्रकार केतकी पुष्प को भी शाप दिया गया कि :—

रे रे केतक दुष्टस्त्वं शठ दूरमितो व्रज ।
ममापि प्रेम ते पुष्पे माभूत् पूजास्वितः परम् ।।
शिव पुराण विष्णु ७।१५

हे केतक ! तू बड़ा दुष्ट और शठ है । यहां से दूर, कहीं

चला जा। मेरा प्रेम तेरे पुष्प पर पूजा में कभी न होगा।

इस प्रकार इसी मूर्ति पूजा के सिद्धान्त ने इन मन घड़न्त कथाओं द्वारा देवताओं को परस्पर लड़ाकर भक्तों में भी फूट की आधार शिला रख दी। जिससे आर्य जाति परस्पर फूट का शिकार बनकर पराधीन हो गई।

भविष्य महा पुराण की एक कथा में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों ने सृष्टिकर्त्ता होने का अभिमान किया और अन्धे हो गये जैसा कि लिखा है कि :—

अहं कर्ताविकर्ताहं पालको हिजगत् प्रभुः।
इत्याह भगवान् ब्रह्मा कृष्ण भीमौ समचितौ ॥
तथैत्य शंकरः क्रुद्धः कःशक्तो मदृतेभुवि।
संहर्तुं जगदेतद्धि स्रष्टुंपालयितुं तथा ॥ ७ ॥
नारायणोप्येवमेव मनाक् क्रोधसमन्वितः।
न वा शक्तो जगत्स्रष्टुं संहर्तुं रक्षितुं तथा ॥८॥
एवंतेषां प्रवदतां क्रुद्धानां च परस्परम्।
समाविशत्तदाऽज्ञानं तमो मोहात्मकं विभो ॥९॥
तेन क्रान्त धियः सर्वे न पश्यंति परस्परम्।
अत्यर्थं मोहमापन्ना न जानन्तीह किंचन ॥१०॥
अपश्यंतो मिथस्ते निषण्णा क्षमातले विभो।
आरमन्ति हियेचान्ये ते दिवाकरमास्थिताः ॥११॥

भविष्य पुराण ब्रह्मा पर्व अध्याय १५३

भगवान् ब्रह्मा जी. कहने लगे कि हे कृष्ण मैं ही इस

जगत् का कर्त्ता पालक और संहारक हूं। तथा क्रुद्ध शंकर ने आकर कहा कि संसार में मेरे अतिरिक्त अन्य कौन जगत् के रचन पालन संहरण कार्य में समर्थवान् हो सकता है ?

नारायण ने भी ऐसा ही क्रोध से कहा कि मेरे अतिरिक्त अन्य कोई जगत् बनाने पालने और संहार करने में समर्थ नहीं हो सकता,

इस प्रकार तीनों क्रुद्ध होकर परस्पर ऐसा कह ही रहे थे कि हे बिभो उन तीनों में मोहात्मक तमो रूप अज्ञान प्रविष्ट हो गया।

उससे उनकी बुद्धि विकल होकर भ्रान्त हो गयी और तीनों अंधे होकर परस्पर देखने में असमर्थ हुए। इतने मोह-युक्त हुए कि कुछ भी न जान सके। तब वह और अन्य सभी देवता सूर्य की उपासना करने लगे। इससे आगे लिखा है कि:-

एवं ब्रह्मादयो देवा पूजयित्वा दिवाकरम्।
शक्तिमन्तोबभूवुस्ते सर्गादीनां प्रवर्तने ॥२५॥

भविष्य पुराण ब्राह्मपर्व १ अध्याय १५६।२५

इस प्रकार ब्रह्मादि देवता सूर्य की पूजा करके ही सृष्टि रचनादि कार्य में समर्थवान हो सके।

स्पष्ट है कि इस प्रमाण में भी तीनों देवों की फूट दिखा कर उन लड़ते हुए देवों को अन्धा बना दिया और इस अन्ध-कोप से उनकी मुक्ति सूर्योपासना के बिना न हो सकी। और

सृष्टि रचन पालन संहरण की शक्ति भी सूर्य भगवान् की उपासना से उनमें आई - अन्यथा नहीं। अतः भविष्य ने सूर्य की महिमा और शेष को सूर्य से नीचे बताया। जिससे व्यंजित हो कि सूर्य की उपासना ही करनी चाहिये, शेष सब दासवत् हैं।

भागवत पुराण में विष्णु की महिमा और शिव ब्रह्मा को मत बनाते हुए लिखा है कि :—

यद्वाचि तन्त्र्यां गुणकर्म दामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः। सर्वे वहामो बलिमीश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः॥ भागवत पुराण स्कंध ६ अध्याय १५

जिसकी वाणीरूपी तन्त्री में हम गुणकर्म रूपी रस्सियों के साथ कठिनतर कार्यों में बांध दिये गये हैं तथा हम सब विष्णु रूप ईश्वर के लिये पशु की भांति नाक में नुकेल डाले हुए के समान हैं।

शिव पुराण में शिव और शिवलिङ्ग की महिमा गायी है और लिखा है कि :-

पार्थिवं शिवलिंगं च विप्रो यदि न पूजयेत्।
सयाति नरकं घोरं शूल प्रोतं सुदारुणम् ॥२६॥
शिव पुराण विद्येश्वर संहिता १ अध्याय १९

जो ब्राह्मण पार्थिव शिवलिंग की पूजा न करे तो वह शूलों से भरे कष्ट दायक नरक को भोगता है।

इस प्रकार पुराणों में फूट के कुछ उदाहरण यहाँ दिखाये गये हैं। जब उपास्य में फूट है तो उपासक फूट से कैसे बच सकते हैं? जब बहुत देवता मान लिये तो एक २ की महत्ता के लिये पुराणों की सृष्टि भी होने लगी। अतः आर्य जाति में फूट गहरी से गहरी होती गयी।

भला हो महर्षि दयानन्द सरस्वती का जिसने मूर्ति पूजा का घोर खंडन करके वेद से सच्चे परमात्मा की सच्ची पूजा का विधान बताया। काशी शास्त्रार्थ में विद्वत्मंडली एक भी मंत्र मूर्त्ति पूजा के सम्बन्ध में न दिखा सकी किन्तु ऋषि दयानन्द ने स्पष्ट वेद मंत्र विद्वानों के सम्मुख उपस्थित कर दिये कि :—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

यजुः अध्याय ३२/३ परमेश्वर की कोई प्रतिमा=मूर्त्ति नहीं है जिसका नाम महान् यश दायक है।

स पर्यगाच्छुक्रमकायम ब्रणम स्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्। यजु अध्याय ४०/८

परमेश्वर सर्व व्यापक, अपने कार्यों में शीघ्रकारी, काया-रहित, व्रण तथा नस नाड़ी से रहित, शुद्ध स्वरूप है जो कभी पापयुक्त नहीं होता अतः वह शरीर तथा नस नाड़ी के बन्धन में कदापि नहीं आता।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये ऽसं भूतिमुपासते।
ततो भूयइव ते तमो य ऽसंभूत्यां रताः॥

यजु अध्याय ४०

जो लोग कारण रूप प्रकृति और कार्य रूप जगत् के पार्थिव पदार्थों की मूर्त्ति आदि की पूजा करते हैं वह घोर अन्धकार में जाते हैं।

स्वयं पुराणों में मूर्त्ति पूजा निषेध के प्रमाण मिलते हैं। जैसा कि :—

नाम्ब मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकाले न दर्शनादेव सांधवः॥

भागवत पुराण १०/८४/११

तीर्थ जलमय नहीं होते, देवता मट्टी और पत्थर के बने नहीं होते। यह दीर्घकाल पक पूजे जाकर भी मनुष्यों को पवित्र नहीं बनाते। साधु तो दर्शन मात्र से ही (उपदेश द्वारा) पवित्र करते हैं।

नाग्निर्न सूर्यो न चचंद्र तारकाः,
न भूर्जलं खं श्वसनो ऽथ वाङ् मनः।

उपासिता भेद कृतो हरन्त्यघं, विपश्चितोघ्नन्ति मुहूर्त्त सेवया॥

भागवत १०/८४/१२

अग्नि, सूर्य, चादं, तारे, भूमि, जल, आकाश, वायु, वाणी और मन की उपासना से पाप नष्ट नहीं होते। विद्वान् तो मुहूर्त्त भर की सेवा से पाप नाश के हेतु बनते हैं।

यस्यात्म बुद्धिः कुणये त्रिधातुके, स्वधी कलात्रादिषु, भौ म इज्यधीः। य स्तीर्थ बुद्धिः सलिले, न कर्हिचित जने ष्वभिज्ञेषु, स एव गोखरः॥

भागवत पुराण १०/८४/१३

वातपित्त कफात्मक शरीर में जिस की आत्म बुद्धि है। जो स्त्री आदि में स्व बुद्धि रखता है और जो पार्थिव पदार्थों में उपासना बुद्धि रखता तथा जो पानी में तीर्थ बुद्धि समझता है। वह मनुष्य बुद्धिमान् जनों में कदापि नहीं। प्रत्युत वह तो गौओं का चारा ढोने वाला खर है।

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्त मात्मानमी श्वरम्।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोतिसः॥
भागवत पुराण ३/२९/२२

जो मुझे सर्व व्यापक ईश्वर की अपने आत्मा में उपासना छोड़कर अन्यत्र पूजा करता है। वह भस्म में हवन करने के समान व्यर्थ है। अतः अपनी आत्मा में ही व्यापक ईश्वर की उपासना करनी उचित है।

वेद में भी एक ईश्वर की पूजा का विधान तथा अन्य की पूजा का निषेध है। देखिये :—

म चिदन्यद् विशंसत सखायो मारिषण्यत। ऋग्वेद ८।१।१

ऐ मित्रों! ईश्वर को छोड़कर अन्य की पजा मत करो ऐ मित्रों! अन्य की स्तुति कर के मत मरो। अर्थात् ईश्वर पूजा से अमृत पद = मोक्ष की प्राप्ति और अन्य की पूजा से मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है। पुनः वेद में कहा कि :—

तमुष्टवाम य इमा जज्ञान। ऋग्वेद ८।६९।६

ऐ लोगों! उसकी पूजा करो जिसने इन सब सृष्टियों

की रचना की है।

वेद के अनेक मंत्रों में एक ही परमेश्वर की उपासना का विधान सर्वत्र विद्यमान है। अतः ऋषि दयानन्द जी महाराज ने आर्य समाज के दूसरे नियम में ठीक ही लिखा है कि :-

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान् न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्व व्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टि कर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है। बोलो सत्सनातन वैदिक धर्म की जय !

बोलो काशी शास्त्रार्थ के विजेता
महर्षि दयानन्द सरस्वती की जय !!

ईशा वास्यमिद ँ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥
यजु० ४० । १

सृष्टि में (संसार में) जो कुछ भी चलायमान (क्रियमाण उत्पन्न मात्र) वस्तु है, वह सब ईश्वर से वासित (व्याप्त होने योग्य) है। इस कारण त्यागभाव से (इसका) भोगकर मत ललचा। धन किसका है (अर्थात् किसी का नहीं)।

मूर्त्ति-पूजा और इस्लाम

[श्री पं० विहारीलाल जी शास्त्री, काव्यतीर्थ]

मूर्त्ति पूजा के सम्बन्ध में कुरान के आदेश

'किन को शरीक (ईश्वर के समान) बनाते हैं जो एक वस्तु भी उत्पन्न न कर सकें और जो स्वयं रचे जाते हैं।
(सूर ए अयराफ़)

अल्लाह के अतिरिक्त अन्य किसी ऐसे को न पुकारो जो न तुम्हारी भलाई कर सके न बुराई फिर भी यदि तुमने यह किया तो तुम पापियों में हो। (सूर ए यूनस)

मूर्त्ति पूजा का सबसे अधिक विरोधी मुहम्मदी मत (इस्लाम) है। कुरान के अनुसार मूर्त्तिपूजक मुश्रिक हैं।

अर्थात् मूर्त्तियों को देवताओं को, अल्लाह का साझी (शरीक) बनाते हैं (मुश्रिक-शरीक करने वाला) ईश्वर लाशरीक (अद्वितीय) है। अतः कुरान की आज्ञा है कि मुश्रिकों को कतल (वध) कर डालो—कातिलुऽऽल मुश्रि-कीना काफ्फतन् कमा युकातिलून कुम् काफ्फतुन-(सूर एतोबा)

अर्थ—'मुश्रिकों से प्रत्येक प्रकार से लड़ो जैसे वे तुम से

प्रत्येक प्रकार से लड़ते हैं।'

पूरे कुरान में जहां तहां मूर्त्तिपूजा (शिशर्क) का विरोध मिलता है। मूर्त्ति पूजा के विरोध में मुसलमानों ने वा कुरान ने किसी बौद्धिक युक्ति से व तर्क से काम नहीं लिया। केवल तलवार चलाई और लाखों व्यक्तियों को निर्दयता एवं क्रूरता पूर्वक वध किया। स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सबों को ही मारा काटा। नगर जला दिये। करोड़ों रुपयों का धन-माल लूटा। अच्छे-अच्छे कलापूर्ण मन्दिर नष्ट कर डाले। हमने चित्तौड़ मे महाराना कुम्भा जी के कीर्त्ति स्तम्भ मे देखा कि सब ही मूर्त्तियों के नाक, मुंह टूटे हुये हैं। ये मूर्त्तियाँ स्तम्भ के पत्थरों में उत्कीर्ण हैं। स्तम्भ संगमर्मर का बना है। वहाँ के रखवालों ने बताया कि जब अकबर ने चित्तौड़ का दुर्ग जीता तब उसके मुसलमान सैनिकों ने ये मूर्त्तियां खंडित कर डालीं इसी प्रकार भेड़ा घाट जबलपुर में नर्मदा के किनारे चौंसठ जोगिनों का मन्दिर है उसकी सब मूर्त्तियां खण्डित की गयी हैं। यह कुकृत्य औरंगजेब के सैनिकों ने किया था। मूर्त्ति को तोड़ना और चित्रों को नष्ट कर डालना इस्लाम में बहुत पुण्य माना गया है। कुछ इस्लामी विद्वानों का मत है किचित्र नहीं केवल मूर्त्तियाँ घर में रखना निषिद्ध है। कुछ का कथन है कि प्राणि मात्र की आकृति बनाना पाप है। क्योंकि प्रलय के दिन खुदा पूछेगा कि ये आकृतियां तुमने बनाई हैं तो इन में जान डालो और उनको उन मूर्त्तियों और चित्रों सहित नरक में ढकेल दिया जायगा। क्योंकि जिस घर में प्राणियों

की आकृति होगी उस घर में बरकत का (समृद्धि का) फरिश्ता नहीं जाता। किन्तु अब ये अन्ध विश्वास मुसलमानों में से दूर हो रहे हैं।

अनेक मुसलमान चित्रकार हैं और सैकड़ों मुसलमानों ने अपने चित्र बनवा रक्खे हैं। रामपुर के नवाब श्री हामिद अली खां साहब ने अपनी और अपने दादा साहब की मूर्त्तियाँ संगमर्मर की बनवाई थीं। जिनमें से श्री हामिद अली खां साहब की मूर्त्ति जो अब भी एक पार्क में मुरादाबाद से बस द्वारा आने वाले पक्की सड़क के बायीं ओर देख सकते हैं। अकबर के जो महल सीकरी में बने हैं उनमें अनेक प्रकार के चित्र रंगीन और कलापूर्ण बने हैं। परन्तु इन चित्रों के चेहरे औरंगजेब ने बिगड़वा डाले थे। वस्तुतः इस्लाम और उस पर पूरी तरह चलने वाले मुसलमान मूर्त्ति कला और चित्रकला के घोर शत्रु हैं।

अब विचार करिये इस ललितकला से उन्हें क्यों चिढ़ है यह सुन्दर कला मनों में कोमलता लाती है। उदात्त भावना बढ़ाती है। फिर इससे घृणा क्यों ? विचार करके देखा जाये तो इस्लाम में मूर्त्ति पूजा का विरोध किन्हीं आध्यात्मिक भावनाओं को लेकर नहीं हुआ। विना विचारे अपना समूह बढ़ाने के लिये और परस्पर घृणा फैलाकर अपना राज्य स्थापित करने के लिये ही यह विरोध हुआ है ऐसा विदित होता है।

आर्य धर्म में तो मूर्त्ति पूजा का निषेध इसलिये किया गया है कि मूर्त्ति पूजा के द्वारा मनोवृत्ति अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी हो जाती है। और चेतन अपने को भूलकर अपनी बनाई जड़कृतियों के आधीन अपने को बना डालता है। सर्व व्यापक ईश्वर को एक देशी बनाकर अज्ञान का प्रचार करता है। साथ ही चमत्कार आदि अन्ध विश्वास भी इससे फैलते हैं। अब जहां तक अन्धविश्वासों का सम्बन्ध है तो मूर्त्तिपूजकों से सहस्र गुना अन्धविश्वास मुसलमानों में है। और यह केवल ऊपरी बात नहीं है। इस अन्धविश्वास का मूल है हज्म करना जिसका कि अनिवार्य विधान कुरान में है। जो लोग मक्के की इमारत और उसमें लगे हुए काले पत्थर को (संगे अस्वद को) अपनी श्रद्धा का फ्रेम बना ले और उसकी परिक्रमा करके अपने को पुण्यवान् समझे।

उस काले पत्थर को चूमकर अपने अपराधों को क्षमा किया हुआ (दण्ड रहित) मान ले उस अन्धविश्वासी को क्या अधिकार है,ईसाइयों की सलीब तोड़ने का, हिन्दुओं की मूर्त्तियाँ और मन्दिरों को नष्ट करने का? मुसलमानों का तथा इस्लाम का मूर्त्ति-पूजा विरोध भी एक बड़ा भारी अन्धविश्वास ही है। मूर्त्ति को पूजना जो पुण्य समझता है, और जो मूर्त्ति का तोड़ना पुण्य समझता है, दोनों ही अन्ध-विश्वासी हैं। मूर्त्ति जड़ है, वह न सम्मान की अनुभूति रखती है, और न अपमान की। इसलिये आर्य लोग न मूर्त्ति पूजक हैं न मूर्त्ति भंजक।

मुसलमानों की कब्रपरस्ती का मूल है मदीने में हज-रत मुहम्मद साहब की समाधि पर जाकर प्रार्थना करना। जब रसूल की कब्र के दर्शन पुण्य हों तो फिर अजमेर में ख्वाजा साहब की कब्र पर जाकर पुण्य क्यों न लूटा जाये।

हिंदुओं के मन्दिरों से भी अधिक मुसलमानों की कब्रें पुज रहीहैं। अजमेर बहराइच बदायूं और पीरानेकलियर में जाकर मुसलमानों के अंध-विश्वासों की झाँकी देखी जा सकती है। श्री पं० भोजदत्त जी आर्यमुसाफिर ने ठीक ही लिखा है—

बज़ाहिर पीरो पैगम्बर परस्ती इनका है इमाँ,
मगर लफ्ज़ी नुमायश के लिये तौहीद का सामाँ।

इस्लाम ने तौहीद (एकेश्वरवाद) के नाम पर लाखों मानवों की हत्या करी, करोड़ों का माल लूटा, भवन बरबाद किये, परन्तु एकेश्वर उपासना का स्थान आज कब्र और ताजियों की पूजा ने ले रक्खा है। कब्रें जीवित प्राणी की आकृति-सी नहीं है। अतः धड़ाधड़ पुज रही हैं। मूर्त्तियाँ जीवित प्राणियों की आकृति जैसी हैं। अतः तोड़ने योग्य हैं। इस्लाम का यह सिद्धान्त निर्बुद्धितापूर्ण रहा है। जड़ मूर्त्तियाँ न भोग खाती हैं न फूल सूंघती हैं, तो जड़ कब्रों को भी न चादर ओढ़ने की आवश्यकता है, न फूलों के हारों की ना हीं रोशनी और वेश्याओं के नाच की।

जड़ जड़ ही है। ज्ञान शून्य है, फिर वह चाहे ईश्वर की

मूर्त्ति हो वा देवी-देवों की अथवा कब्रें हों या समाधियें उन्हें यह समझ कर पूजना कि ये कामनायें पूर्ण करेंगी, अन्ध-विश्वास है। चेतन के ज्ञान का अपमान है। ईश्वर तो निराकार है, असीम है, उसकी प्रतिमा तो कल्पना से बाहर की वस्तु है।

परन्तु भावों के चित्र बनाना, वीरों की, महापुरुषों की मूर्त्तियों के स्मारक बनाना दूसरी बात है। भावना का ही तो भेद है। महारानी लक्ष्मीबाई की मूर्त्ति झांसी के दुर्ग के पास स्थापित है।

मसऊद और उसके सब साथियों के संहारक महाराज सुहेलदेव जी की मूर्त्ति श्री लाला श्यामलाल जी प्रधान आर्य समाज बहराइच ने स्थापित कराई है। यह मूर्त्ति पूजा वाली भावना से रहित बात है। यह इतिहास को राष्ट्रिय भावनाओं को प्रोत्साहन देने के लिये काव्य है। इससे प्रेरणा मिलती रहती है। ऐसी मूर्त्तियाँ राष्ट्रिय झंडे के समान होती हैं। परन्तु इस्लाम में यह भी तोड़ दी जायेंगी। इस्लाम जड़ वस्तु पूजा का विरोधी नहीं है। आकृति पूजा का आकृति रचना का भी घोर विरोधी है। क्योंकि इस्लाम को विचार से कोई प्रयोजन नहीं। अन्य लोगों के कामों से विरोध करना ही उसका उद्देश्य है ताकि उनसे लड़ा जा सके।

इस्लाम की इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि वह बदनाम हो गया। उसकी प्रगति रुक गयी और मूर्त्ति-पूजा

बन्द न हो सकी। जितने मन्दिर मुसलमानों ने तोड़े उससे अधिक नये बन गये। इस समय तो मुसलमानों के सामने बड़ी कठिनाई यह है कि अल्लाह की आज्ञा तो है कि—

व कातिलू हुम हत्ता लातकूना फित्नतुन्।
यकूनेद् कुल्लहू दीन लिल्लाहि।

अर्थ—और उनसे (मुशरिकों से) तब तक लड़ते रहो जब तक फितना (शिर्क) न मिट जाये और कुल अल्लाह का दीन इस्लाम न हो जाये।

अब मुसलमान काफिरों (कम्यूनिष्टों) से लड़ें तो यह इतने हैं कि मुसलमानों का कचूमर निकाल दें। नहीं लड़ते हैं तो अल्लाह की आज्ञा का पालन नहीं करने के अपराधी हैं।

बुद्धिवाद के विरुद्ध अन्ध-विश्वास पूर्ण इस्लाम मूर्त्ति-पूजा को नहीं हटा सकता। मूर्त्ति-पूजा अज्ञान जन्य है, वह ज्ञान के प्रचार से ही दूर हो सकती है।

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्र विद्यते" (गीता)

मूर्त्ति-पूजा और पुराण

आचार्य श्री पं० सत्यमित्र जी शास्त्री वेदतीर्थ
बड़हलगंज, गोरखपुर

अष्टादश पुराणों में स्थान-स्थान पर पाषाण मूर्त्ति-पूजा का विधान नहीं है। अपितु खुलकर खण्डन।

यथा—तीर्थेषु पशु यज्ञेषु काष्ठ पाषाण मृण्मये
प्रतिमादौ मनोयेषां ते नरा मूढ़ चेतसः
मृच्छिला धातु दार्वादि मूर्त्तावीश्वर बुद्धयः
क्लिश्यन्ति तपसा मूढ़ाः परां शान्ति मंयान्ति ते ॥
—देवी भागवत स्कन्ध ५ अ० १९

जो जो मनुष्य जलादि तीर्थ पशु यज्ञ तथा काठ और पत्थर की मूर्त्ति में मन लगाते हैं। वे महामूर्ख हैं। मिट्टी पत्थर, लोहा, चांदी आदि तथा लकड़ी की मूर्त्ति में जो ईश्वर बुद्धि रखते हैं। वे महामूर्ख हैं।

ज्ञाप्ता सुरां स्तव वशात्सुरादिताश्च।
ये वंभजन्ति युविभावयुता विभग्नान् ॥
धृत्वा करे सुविपुलं खलु दीपकं ते।

कूपे पतन्ति मनुजा विजले रति घोरे ॥
—देवी भागवत् स्कन्ध १९ श्लोक १२-१३

जो यह समझते हुए भी कि सब सूर्य्यादिदेव देवी के वशीभूत हैं। पुनरपि सूर्य्यादि की उपासना करते हैं। वे मानो दीपक को हाथ में लिये हुये भी जल शून्य अन्धकारा-च्छन्न कूप में गिरते हैं।

३—शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कार्यम्।
मीनो वभूव कमठः खलु शूकरस्तु ॥
पश्चात् नृसिंह इति छल कृत्धरायो।
तत् सेवतां जननि मृत्यु भये न किस्यात् ॥
देवी भागवत् स्कन्ध ५ अ० १९

देवी भागवत में आता है कि भृगु ने क्रोध में आकर विष्णु को शाप दिया। अतः छली भूमि पर मछली कछुआ सूकर तथा नृसिंह अवतार धारण किया। इनको पूजने वाले को मृत्यु भय रहता है। इस प्रकार जो शिव गणेश आदि की मूर्त्तियों को पूजते हैं वे रौरव नरक में जाते हैं। देखो देवी भागवत् स्कन्ध ५ अ० १९ श्लोक १९-२०

४—मूर्त्ति पूजा धूर्तों ने चलाई—

प्राप्ते कलावहह दुष्तरे च काले।
न त्वां भजन्ति मनुजाननु वंचितास्ते ॥
धूर्तपुराणचतुरैः हरिशंकराणाम्।

सेवा पराश्च विहिताश्तव निर्मितानाम् ।।
देवी भागवत स्कन्ध ५ अ० १६ श्लोक ४२

भयंकर कलिकाल में उस ईश्वर अजन्मा व्यापक शक्ति को छोड़कर अन्य की पूजा करेंगे वे धूर्तों और पाखण्डियों के चलाये तथा स्वनिर्मित मूर्त्तियों की पूजा करने वाले घोर नरक में जायेंगे । यह मूर्त्ति पूजा धूर्तों ने चलाई और वेदों के स्थान पर पुराणों की रचना करने वाले सब रावण वाणासुर राक्षसों की सन्तान हैं ।

५–श्रीमद् भागवत में मूर्त्ति पूजा करने वाले बैल और गधे हैं । यस्यात्म बुद्धिः कुणये लिधातुके
स्वधीः कलत्राष्टि भौमइअधः ।।
यस्तीर्थ बुद्धिः सलिलेन कर्हिचित् ।
जनेष्वयिज्ञेषु स एव गोखरः ।।
श्रीमद् भागवत श्लोक १३ स्कंध १० अ० ८४

अर्थात् जो मिट्टी काष्ठ आदि की देवों की पूजा करता है । अथवा जड़ देवताओं को ईश्वर मानता है । वह बैल और गधे की बुद्धि रखता है ।

६—मूर्त्ति पूजा करने वाले मुर्गे का जन्म पाते हैं । देखो

गरुण पुराण–मृतस्यैकादशाहं भुजानः श्वभ जायेते ।
योनि देवलकः विप्रः योनि कुक्कुट सज्ञकाम् ।।
गरुण पुराण प्रेत खण्ड अ० ३४ श्लोक १८

जो मृत का एकादशाह खाता है। वह कुत्ते का जन्म पाता है और मूर्त्ति पूजक ब्राह्मण मुर्गे का जन्म पाता है। इस प्रकार अनेक पुराणों में मूर्त्ति पूजा का निषेध है।

७—जितनी मूर्त्तियां हैं। सब बदमाश व्यभिचारियों की हैं उनकी पूजा नहीं करनी चाहिये।

शिव माया प्रभावेण मूर्छारिः काम मोहितः
पर स्त्री घर्षणं चक्रे बहुवारं मुनीश्वर ॥१७

इन्द्रस्त्रि दशो भूत्वा गौतम स्त्री विमोहितः
पापंचकार दुष्टात्मा शापं प्राप्त मुनेस्तदा ॥१८

चन्द्रश्च मोहितः शम्भोः माया काम समन्वितः।
गुरुपत्नी जहाछ्य पुनस्चेतेनैव चोश्चछुतः ॥२६

दक्षश्च मोहितः शंभोः मायया ब्राह्मणः सुतः
भ्रातृभिः सह भगिन्यां वै भोक्तु कामो भवत्पुरा ॥१७

ब्रह्मादि वहुवारं हि मोहितः शिवमायया
अभवत भोक्तु कामश्चस्वसुणयां परासुव ॥३८

शिव पुराण उमा संहिता अ० ४

अर्थात्—इन्द्र गौतम स्त्री से पाप किया चन्द्रमा ने गुरु पत्नी से ब्रह्म सुतः दक्ष आदि अपनी भगिनी से ब्रह्मा ने पुत्री अतः इन व्यभिचारियो की मूर्त्ति पूजा नहीं करनी चाहिये।

८–ब्रह्मा विष्णु शंकर तीनों ने मिलकर सती अनसुइया के सतीत्व को डिगाया जिससे शापकारण मूर्त्तियां बनी और शंकर जी का लिंग कटकर १२ स्थानों पर गिरा। अतः इन दुष्ट व्यभिचारियों की पूजा नहीं करनी चाहिये।

भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व खंड ३ अ० १०
श्लोक ३७ से ७५ तक

अतः पुराणों में सर्वत्र मूर्त्ति पूजा का निषेध है।

८–अतः ऋषि दयानन्द ने काशी को हिलाया और शास्त्रार्थ के मैदान में मूर्त्ति पूजक पण्डितों का पोल खोलकर दिखला दिया।

काशी नगर्यां नैवेदृशी भूत सभा, सभास्तेनच भाविनी वा-
शास्त्रार्थ चर्चा कपटेन किंचित् कूतूहलं चेतसि सन्तनोमि ॥
समर्थ वेदार्थ पथावलम्बिनी महत्त्व दीक्षा भुवने विराजते।
विराजते विश्वतले स एवतुः स्वामी दयानन्द सस्वती यतिः ॥

अन्य स्थानों का प्रमाण न देने का कारण केवल पुराणों से सिद्ध करना है कि मूर्त्ति पूजा पुराणों में नहीं है। सारी लीला निगोदर महोदधि पूरणाय—उदर रूपी उदधि को पूर्ण करने के लिये है।

बाइबिल और मूर्त्ति-पूजा

[आचार्य श्री डा० श्रीराम जी आर्य]

ईसाई तथा यहूदी दोनों सम्प्रदायों का मुख्य धर्म ग्रंथ बाइबिल है। यहूदी मत का संशोधित संस्करण ही ईसाई मत है। दोनों मूर्त्तिपूजा के विरोधी हैं। बाइबिल के अन्दर तौरेत, जबूर, इन्जील आदि कई पुस्तकों का समावेश है। उनको देखने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में ईसाई मत की स्थापना से पूर्व इस्राइल देश में मूर्त्ति पूजा का प्रचार था। वहाँ सूर्य, शिव आदि की मूर्त्तियों की पूजा लोग करते थे। मूर्त्ति पूजा का प्रचार उस देश में भारत से ही फैला था। बाइबिल में मूर्त्ति पूजा के निषेध में अनेक प्रमाण मिलते हैं। हम कुछ प्रमाण इस विषय में आगे देते हैं।

मूर्त्ति पूजा के निषेध प्रमाण

'तू अपने लिये कोई मूर्त्ति खोद कर न बनाना, न किसी की प्रतिमा बनाना, जो आकाश में, वा पृथ्वी पर वा पृथ्वी के जल में हैं। ४। तू उनको दण्डवत न करना और न उनकी उपासना करना, क्योंकि मैं तेरा परमेश्वर जलन रखने वाला ईश्वर हूं········।५।' (निर्गमन २०)

'तुम अपने लिये मूरतें न बनाना और न कोई खुदी हुई मूर्त्ति वा लाट अपने लिये खड़ी करना, और न अपने देश में दण्डवत करने के लिये नक्काशीदार पत्थर स्थापन करना, क्योंकि मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ।'१। (लैव्यवस्था २६)

'उन लोगों से ऐसा बर्ताव करना, कि उनकी वेदियों को ढा देना, उनकी लाटों को तोड़ डालना, उनकी अशेरा नाम की मूर्त्तियों को काटकर गिरा देना और उनकी खुदी हुई मूर्त्तियों को आग में जला देना।५।' (व्यवस्था विवरण ७)

'जिन जातियों के तुम अधिकारी होगे, उन के लोग ऊँचे ऊँचे पहाड़ों वा टीलों पर वा किसी भाँति के हरे वृक्षों के तले जितने स्थानों में अपने देवताओं की उपासना करते हैं, उन सभी को तुम पूरी रीति से नष्ट कर डालना।२। उनकी वेदियों को ढा देना, उनकी लाटों को तोड़ डालना, उनकी अशेरा नाम मूर्तियों को आग में जला देना, और उन देवताओं की खुदी हुई मूर्त्तियों को काटकर गिरा देना, कि उस देश में से उनके नाम तक मिट जाएं।३।' (व्यवस्था विवरण १२)

'यदि तेरा सगा भाई, वा बेटा वा बेटी वा तेरी अर्धाङ्गिन, वा प्राण प्रिय तेरा कोई मित्र निराले में तुझको यह कह कर फुसलाने लगे, कि आओ हम दूसरे देवताओं की उपासना वा पूजा करें जिन्हें न तो तू, न तेरे पुरखा जानते थे।६। चाहे वे तुम्हारे निकट रहने वाले आस पास के लोगों

के चाहे पृथ्वी के एक छोर से लेके दूसरे छोर तक दूर-दूर के रहने वालों के देवता हो ।७। तो तू उनकी न मानना, और न तो उनकी बात सुनना, और न उन पर तरस खाना, और न कोमलता दिखाना, और न उनको छिपा रखना ।८। उसको अवश्य घात करना, उसके घात करने में पहिले तेरा हाथ उठे, पीछे सब लोगां के हाथ उठे ।९। इस पर ऐसा पथर बार करना कि वह मर जाय···।१०।' (व्यवस्था ि०ं १३)

'और बाल देवताओं की वेदियां उनके सामने तोड़ डाली गई, और सूय की प्रतिमाये जो उनके ऊपर ऊँचे पर थी, उसन काट डाली, और अशेरा नाम और ढली हुई मूरतों को उसने तोड़कर पीस डाला, और उसकी बुकनी उन लोगों की कबरों पर छितरा दी, जो उनको बलि चढ़ाते थे ।४। और पुजारियों की हड्डियां उसने उन्हीं का वेदियों पर जलाई यों उसने यहूदा और यरुशलम को शुद्ध किया ।५। और अशेरा नाम और खुदी हुई मूरतों को पीस कर बुकनी कर डाला, और इस्राइल के सारे देश की सूर्य की सब प्रतिमाओं को काट कर यरुशलम को लौट गया ।७।' (२ इतिहास ३४)

'जो मूरत खोदकर बनाते हैं वे सबके सब व्यर्थ है···।९।' (याशायाह ४४) 'जो सुनार को मजदूरी देकर उससे देवता बनवाते हैं, तब वे उसे प्रणाम करते वरन् दण्डवत भी करते है ।६। वे उसे उसके स्थान पर रख देते और वह वहीं खड़ा रहता है, वह अपने स्थान हट नहीं सकता, यदि कोई उसकी

दोहाई भी दे तो भी न वह सुन सकता है, न विपत्ति से उसका उद्धार कर सकता है ।७।' (याशायाह ४६)

'जब तू दोहाई दे तब जिन मूर्तियों को तू ने जमा किया है, वे हीं तुझे छुड़ाए ! वे तो सबकी सब वायु से वरन् एक ही फूँक से उड़ जाएंगी । परन्तु जो मेरी शरण लेगा वह देश का अधिकारी होगा, और मेरे पवित्र पर्वत का भी अधिकारी होगा ।१३।' (याशायाह ५७)

'परमेश्वर यहोवा यों कहता है, मैं नोप में से मूरतों का नाश करूँगा और उसमें की मूरतों को न रहने दूँगा ।१३।' (यहेज केल ३०)

'उन्होंने क्यों मुझको अपनी खोदी हुई मूरतों और परदेश की व्यर्थ वस्तुओं के द्वारा क्रोध दिलाया है ।१९।' (यिर्मियाह ८)

'क्योंकि तुम यह जानते हो कि किसी व्यभिचारी या अशुद्ध जन, या लोभी मनुष्य की जो मूरत पूजने वाले के बराबर है, मसीह और परमेश्वर के राज्य में मीरास नहीं ।५।' (इफिसियों ५)

'मेरी आज्ञा उलंघन करके पराये देवताओं की, सूर्य वा चन्द्रमा वा आकाश के गण में से किसी की उपासना की हो वा उनको दण्डवत किया हो ।३। और यह बात तुझे बतलाई जावे और तेरे सुनने में आये तब भली भाँति पूँछताछ करना,

और यदि यह बात सच ठहरे कि इस्राएल में ऐसा घृणित कर्म किया गया है ।४। तो जिस स्त्री वा पुरुष ने ऐसा बुरा काम किया हो उस पुरुष वा स्त्री को बाहर अपने फाटक पर ले जाकर ऐसा पत्थरवाह करना कि मर जाए ।५।' (व्यवस्था विवरण १९)

बाइबिल के उपरोक्त उद्धरणों को देखकर यह विचार उत्पन्न होता है कि यहूदीमत तथा ईसाई मत दोनों ही प्रत्येक प्रकार की मूर्त्ति पूजा के घोर विरोधी रहे हैं । उनके खुदा (यहोवा) ने किसी भी प्रकार की मूर्त्ति बनाने व उसे पूजने का निषेध किया है तथा मूर्त्ति की स्थापना व पूजा करने वालों को कत्ल कर देने व मूर्तियों को तोड़ देने व जला डालने का आदेश दिया है । इससे यह भी स्पष्टतया सिद्ध है कि यहूदी व ईसाई मत वालों का खुदा सर्वथा असहिष्णु था, वह मूर्त्ति पूजा करने वालों से जला करता था । ईर्षालु व द्वेषी व्यक्ति को खुदा मानना भी बुद्धिहीनता की बात है ।

हम जहाँ बाइबिल में मूर्त्ति पूजा व मूर्त्ति बनाने का विरोध पाते हैं वहाँ हमें ऐसे प्रमाण भी उसमें मिलते हैं जहाँ मर्त्ति की उपयोगिता भी बताई गई है । इस विषय में निम्न उद्धरण देखने के योग्य है ।

-मूर्त्ति की उपयोगिता-

'यहोवा का हाथ उस नगर के विरुद्ध ऐसा उठा कि उसमें अत्यन्त बड़ी हलचल मच गई और उसने छोटे से बड़े

तक उस नगर के सब लोगों को मारा और उनके गिलटियां निकलने लगी ।९। (१ शमुएल ५) उन्होंने पूँछा हल उनकी हानि भरने के लिये कौन सा दोष बलि दे ? वे बोले सोने की पांच गिलटियां और सोने के पांच चूहे ।४। तो तुम अपनी गिलटिया और अपने देश को नाश करने वाले चूहों को भी मूरतें बनाकर इस्राएल के देवता की महिमा मानों, सम्भव है कि वह अपना हाथ तुम पर और तुम्हारे देवताओं और तुम्हारे देश पर से उठा ले ।५। उन्होंने वैसा ही किया और उन चूहों आदि की मूत्तियों के साथ यहोवा का सन्दूक बेतशेमी को भेज दिया ।१९। (१ शमूएल ६)

याशायाह तथा व्यवस्था विवरण के ऊपर दिये प्रमाणों में किसी भी प्रकार की मूत्ति बनाने का निषेध है तो १ शमू-एल ६ में चूहों की सोने की मूर्त्ति बनाकर यहोवा (ईश्वर) को भेंट करने से विपत्तियों के नाश का आश्वासन व व्यव-स्था देना उसके विरुद्ध है । जब चूहों की मत्तियों को यहोवा को भेंट करने से यहोवा प्रसन्न हो जाता है तो मूत्तियों की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है । यदि इसी प्रकार कोई व्यक्ति देवता की मूत्ति बनवा ले तथा उसका आदर करे तो उसको कैसे दोष दिया जा सकता है । चूहों की मर्ति की अपेक्षा यहोवा अथवा देवताओं की मूर्त्तियाँ विशेष महत्त्व ही स्वयं सिद्ध हैं ।

यहोवा के जड़ पदार्थों से बातें करने का भी एक दृष्टा-न्त यहाँ देना उचित होगा जो इस प्रकार है :-

खुदा का हड्डियों से बातें करना–

'परमेश्वर यहोवा तुम (सूखी) हड्डियों से यों कहता है देखो मैं आप तुम मे सांस समवाऊँगा और तुम जी उठोगी।' ५ (यहेज केज ३९)

सर्प मूर्त्ति दर्शन से विषनाश–

'यहोवा ने मूंसा से कहा एक तेज विष वाले सांप की प्रतिमा बनवा कर खम्भे पर लटका, तब जो सांप से डसा हुआ उसको देख ले वह जीवित बचेगा ।८। सो मूंसा ने पीतल का एक सांप बनवाकर खम्भे पर लटकाया तब सांप के डसे हुओ में से जिसने उस पीतल के सांप की ओर देखा वह जीवित बच गया ।९।' (गिनती २१)

जब पीतल की सर्प मूर्त्ति को देखने मात्र से भयंकर विषधर सर्प से काटे हुए आदमी का सर्प विष नष्ट हो जाता है तो देवता की मूर्त्ति के दर्शन मात्र से पापों का नष्ट होना कोई मान ले तो उसे दोषी कहने का किसी भी ईसाई वा उसके खुदा (यहोवा) को क्या अधिकार है ? जब यहोवा स्वयं मृतक मनुष्य की सूखी सड़ी गली हड्डियों को संबोधन करके उनसे बाते करता है तो यदि उसी प्रकार कोई व्यक्ति अपने देवता की मूर्त्ति को संबोधन करके बाते वा प्रार्थना करने लगे तो उसे दोषी ईसाई कैसे कह सकेंगे ।

वास्तुतः बाइबिल की स्थिति मूर्त्ति पूजा के खण्डन के

विषय में बड़ी हास्यास्पद । यहूदी मत से पूर्व उस देश इस्राएल में सूर्य, चन्द्रमा, शिव जी आदि का मूर्त्तियों की भारत के समान पूजा बहुत अधिकता से होती थी। यहूदी विद्वानों ने उसके निरोध के लिये बहुत सख्ती से प्रयत्न किये थे जैसा कि पीछे दिये उदाहरणों से सिद्ध है। फिर भी वे अनेक ऐसी बातें बाइबिल में लिख गये हैं जो उनके पक्ष के विरुद्ध हैं।

यहोवा का मूर्त्तिपूजकों को कत्ल वा पत्थर वाट करके मार डालने को कहना उसकी मूर्खता को प्रकट करता है। दूसरों को समझा-बुझाकर अपने विचारों व मान्यताओं से प्रभावित करके मूर्त्ति पुजा से हटाने का प्रचार ही सभ्य संसार को मान्य है जैसा कि आर्यसमाज की कार्य प्रणाली के अन्तर्गत है। इस दृष्टि से वाइबिल का मूर्त्ति-पजा निषेध असभ्य प्रकार है।

ईसाई लोगों में ईसा को सूली देने के क्रास की मूर्त्ति वा चित्र बना कर गले में हर समय लटकाये रहने की परंपरा है जो स्वयं एक मूर्त्ति-पूजा है। वे क्रास के सामने खड़े हो कर प्रार्थना करते हैं अतः ईसाई एवयं मूर्त्ति-पूजाक है। मूर्त्ति-पूजा का खण्डन वा निषेध करने का वास्विक अधिकार केवल आर्य समाज को है जो ईश्वरोपासना की सत्य वैदिक विध को जानता व उसका प्रचार करता है; अन्य किसी भी सम्प्रदाय को नहीं है। मुसलमान भी काबे की ओर मुंह करके नमाज पढ़ते तथा संगेअस्वद 'शिवलिंग' को मक्का में

जाकर चूमते हैं। वे भी इस अर्थ में जड़ोपासक वा मूर्त्ति-पूजक है। मुहम्मद साहब से पूर्व मक्का में ३६० शिव जी के मन्दिर थे। मक्का का शुद्ध नाम 'महाकाया' था। मुहम्मद साहब के सभी पूर्वज मूर्त्तिपूजक थे। मुहम्मद ने यहूदी मत के प्रभाव में आकर सारे मन्दिर तोड़ डाले। केवल एक अत्यन्त विशाल शिवलिंग शेष रह गया जो कि उसकी किसी पत्नी के आग्रह पर छोड़ दिया गया था। वही विशाल संग मूसा पत्थर का बना शिवलिंग आज 'संगे अस्वद' कहा जाता है जिसको सभी हज्ज को वहां जाने वाले मुसलमान हाजी लोग श्रद्धा व प्रेम से चूमते हैं। मुसलमानों का अन्ध विश्वास है कि बिना उसका बोसा लिये पाप नष्ट नहीं होते हैं। वह पत्थर बोसा लेने वालों के पापों को स्वयं सोख लेता है। और पापों को सोखते-सोखते वह काला पड़ गया है।

इस प्रकार यहूदी, ईसाई व मुसलमान तीनों ही को मूर्त्ति पूजा किसी न किसी रूप में मान्य है। कबरों पर सूरत फातिहा पढ़ना भी मुसलमानों की मूर्त्ति पूजा का प्रमाण है।

कन्या गुरुकुल हाथरस(जि०अलीगढ़)का उत्सव

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय (सासनी) हाथरस का वार्षिकोत्सव ७, ८, ९, १० फरवरी १९७० को होगा। उसी समय नवीन कन्याओं का प्रवेश भी होगा। जो सज्जन अपनी कन्याओं को प्रविष्ट कराना चाहें, कार्यालय को लिखें।

—मुख्याधिष्ठात्री

उपनिषद् और मूर्ति-पूजा

[श्री पं० शिवदयालु जी, मेरठ]

जीव और ब्रह्म की अज्ञानज दूरी को दूर करने के लिये, जीव को निजस्वरूप का बोध करने और अन्ततम अन्तर्यामी का प्रतिबोध कराने के लिये, जीव को सच्चिदानन्द स्वरूप परमब्रह्म की आनन्दमयी गोद में बैठने के लिये कान्तदर्शी प्राचीन वैदिक ऋषियों ने उपनिषद् साहित्य की सृजना की है। आर्ष उपनिषद् ११ हैं अर्थात् ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, और श्वेताश्वतर।

इनके अतिरिक्त सौ से अधिक स्वार्थी साम्प्रदायिक लोगों की मध्य काल में रची गई तथाकथित उपनिषदें भी हैं। जिस प्रकार स्वार्थी जनों ने १८ पुराण, १८ उपपुराण और ३० से अधिक स्मृतियाँ ऋषि मुनियों के नाम पर रचकर प्रचारित की हैं, उसी प्रकार यह तथा कथित उपनिषदें भी समझनी चाहिये।

ऐमर्शन, सोपनहार, पाल ड्यूशन आदि विदेशी विद्वानों ने इन आर्ष उपनिषदों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। बादशाह दाराशिकोह ने अनेक उपनिषदों का फारसी भाषा में

स्वयं अनुवाद कर इस्लामिक संसार में इनकी मान्यता बढ़ाई है।

इन उपनिषदों में मूर्त्ति-पूजा के लिये लेशमात्र भी स्थान नहीं है। बाह्य वृत्तियों को बन्द कर अन्तर्वृत्ति द्वारा अपने निज स्वरूप में परमानन्द स्वरूप ब्रह्म की दिव्य ज्योतिः को निरखने का उपनिषदें पाठ पढ़ातीं हैं।

ईशोपनिषद् ने आध्यात्मिक ज्ञान अर्थात् विद्या को उस अमृत रस के पान करने का साधन बतलाया है, यथा "विद्य-याँऽमृतमश्नुते"।

कर्मयोग को, श्रेष्ठतम कर्मों की जीवन में साधना करने को, ही कार्य बन्धन से छूटने के लिये एक मात्र साधन बत-लाया है।

यह ज्ञानेन्द्रियों की जिनको प्रभु ने पराङ्मुखी बनाया है, अर्थात् बाह्य जगत् का ही ज्ञान मन के द्वारा आत्मा को पहुंचाना मात्र जिनको प्रयोजन है, ब्रह्म तक जीवात्मा को पहुंचाने की सामर्थ ही नहीं है, जैसा कि कहा है कि— "नैनद्देवा आप्नुवन्"। जब ३१ सूक्ष्म, जड़, पदार्थ इन्द्रियों को ब्रह्म तक पहुंच ही नहीं तो यह मूर्त्तियाँ जो स्थूल जड़ पदार्थ हैं, ब्रह्म की प्राप्ति में कैसे सहायक हो सकती हैं।

व्यवहार में मूर्त्ति-पूजक लोग इन मूर्त्तियों को शिव विष्णु आदि मानकर पूजते हैं किन्तु ईशोपनिषद् ने स्पष्ट

शब्दों में उस ब्रह्म को "शुक्रमकायमव्रणमस्नाविर" कहा है अर्थात् ब्रह्म तो शुद्ध ज्योतिः स्वरूप है, शरीरादि के बन्धनों से पृथक् निराकार है, उसको मूर्तिमान् बताना मन्द मतियों का ही काम है।

केनोपनिषद् मे तो स्पष्ट कहा है कि 'न तत्र चक्षुर्गच्छति नवाग्गच्छतिनो मनो न विद्मो न विजानीयः' अर्थात् उस परमात्मा तक चक्षु, वाक्, मन, बुद्धि तक की गति नहीं है। यह भौतिक तत्व जो मूर्त्ति के दर्शन आदि के साधन हैं ब्रह्मलोक के इस पार तक ही जीवि का साथ देते हैं ब्रह्मलोक में जो सर्व-व्यापक ब्रह्म के साथ सर्वत्र विद्यमान है, जीवात्मा को अपने निज शुद्ध बुद्ध चेतन स्वरूप से प्रवेश करना होता है।

इन्द्रियों के द्वारा अर्थात् तर्क आदि द्वारा परमात्मा की सत्ता आदि का ज्ञान जीवात्मा को हो सकता है, किन्तु उसके तात्विक स्वरूप का बोध तो जीवात्मा को प्रतिबोध के द्वारा ही होता। प्रतिबोध को ही अन्तर्बोध भी कहते हैं।

मन आदि इन्द्रियों को मूर्त्तियों और मूति जगत् से हटा कर अतर्मुखी करने के उपरान्त ही यह प्रतिबोध होना संभव है। जब तक मनचक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ तथा करादि कर्मेन्द्रियों इन मूर्त्तियों के दर्शन, स्पर्शन, धूप दीप नैवेद्य पुष्पादि द्वारा अर्चन में संलग्न हैं अन्तबोध का होना असंभव है। अन्तर्बोध के लिये तो बाहर के पट बन्द करने ही

होंगे ।

कठोपनिषद् में बताया गया है कि संसार का सब धन सम्पत्ति ऐश्वर्य शेवधि है, वह सब अनित्य अर्थात् सदा एक रूप में रहने वाला नहीं । इसी प्रकार मूर्त्ति आदि पदार्थ जो मनुष्य के अपने बनाये हुये हैं, वह भी सब अनित्य हैं, अध्रुव हैं । इन अनित्य अथवा अध्रुव वस्तुओं के द्वारा उस ध्रुव अर्थात् सदा एकरस विद्यमान् ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है, यथा "न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवन्तत्"

वह परमात्मा तो मूढ़ है दुर्दश है हृदय रूपी गुफा में विराजमान जीव के अन्दर अनुप्रविष्ट है । उसकी प्राप्ति तो आध्यात्म योग अर्थात् ज्ञानयोग द्वारा ही सम्भव है, भौतिक मूर्त्ति आदि के उपचारों के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव नहीं, जैसे कहा है कि 'अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्ष शोकौ जहाति"

अन्यत्र कहा है कि वह परमात्मा तो कृत् और अकृत् से भी परे हैं अर्थाथ् सृष्टि और प्रकृति से भिन्न है, यथा "अन्यमास्मात्कृताकृताच्च" अतः यह मूर्त्तियाँ तो ईश्वर कृत् भी नहीं अपितु मानव रचित हैं इनको परमात्मा मानना और इनका आर्चनादि करना बुद्धि बाह्य कृत्य है ।

आगे ब्रह्म को अक्षर कहा है, अर्थात् परमात्मा तो अविनाशी है, परिवर्त्तन रहित सदा एकरस विद्यमान् रहने वाला तत्त्व है, और यह मूर्त्तियाँ जिनको भोला मानव ब्रह्म

के स्थान पर पूजन करता है तो विनश्वर हैं। इन क्षर वस्तुओं से उस अक्षर ब्रह्म की पूजा नहीं की जा सकती। अक्षर ब्रह्म ही इस संसार सागर से पार उतरने के लिये सुन्दर सेतु है।

आत्मा की गहरी गुफा में उसको खोजा जा सकता है। मूर्त्तियों में सर्व व्यापक भगवान् की सत्ता तो सुनिश्चित है, किन्तु उसको खोजने वाला उपासक जीवात्मा मूर्त्तियों में विद्यमान नहीं वह तो इस देह की कन्दरा हृदय के अन्दर विराजमान हैं, अतः हृदय मन्दिर में ही ब्रह्म की पूजा की जा सकती है। बाहर नहीं।

कठोपनिषद् कार ने स्पष्ट कहा है कि अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति' अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड रूपी पुरी में शयन करने वाला वह परमात्मा तो गति का केन्द्र और अन्तिम निधान है और जीवात्मा के अन्दर ओत-प्रोत है वह अधूमक ज्योतिः है अर्थात् सर्वथा अन्धकार से रहित दिव्य ज्योतिः है, जिसका दर्शन ध्यान योग में रत मानव अपने अन्दर ही केवल कर सकता है, बाहर मूर्त्ति आदि में उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है।

यह कहना कि परमात्मा अनन्त है, अतः उसकी प्राप्ति के साधन भी मूर्त्ति-पूजादि अनन्त हैं। निराछुन्न माल है। परमात्मा की कोई सीमा नहीं, कोई पर्यन्त नहीं, उसके ज्ञान बल, क्रियायें भी असीम और अनन्त हैं किन्तु फिर भी वह

परमात्मा एक और अद्वितीय है, अतः उसकी प्राप्ति का मार्ग भी जैसा ऊपर बतलाया है, एक और केवल एक ही है। यथ–'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

जब वह परमात्मा बड़े-बड़े प्रवचनों, उपदेशों और बुद्धि द्वारा भी उपलब्ध नहीं किया जा सकता है, और केवल आत्मा ही अपने शुद्ध बुद्ध चेतन स्वरूप को सम्यक् जानने के उपरान्त ही उसको अपने अन्दर उपलब्घ कर सकता है। तब यह मूर्त्ति-पूजा का क्रिया कलाप अज्ञानियों का अपने मन को फसाना मात्र है, इस सम्बन्ध में कठोपनिषद् में स्पष्ट कहा है कि 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधमान बहुता श्रुतेन'।

संसार में सुख शान्ति और शाश्वत सुखशांति की प्राप्ति के निमित्त यह मूर्त्ति-पूजन का आडम्बर काम न देगा, इस निमित्त तो उस महान् नित्य और चेतन तत्त्व को आत्मा के अन्दर ही खोजना है। इस सम्बन्ध में कठोपनिषद् तथा श्वेताश्वर उपनिषद्' क्या ही मार्मिक शब्द कहे हैं—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तमात्मस्थं येऽनुचश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वेती नेतरेषाम्।

उस परम सूक्ष्म चेतन तत्त्व तक तो सूर्य और चन्द्रमादि जो स्थूल जड़ वस्तुएँ है, की पहुंच नहीं होती फिर उसको धूप देना और दीप दिखाना आरती करना मिथ्या क्रिया

कलाप नहीं तो क्या है।

इस सम्बन्ध में क० में कहा गया है कि 'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः'

आगे उपनिषद्कार ने बहुत ही स्पष्ट कहा है कि 'न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य, न चक्षुषा पश्यति कश्चैनं हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो, य एतद्विदुरमृतास्तेभवन्ति'।

अर्थात् जिस प्रकार इस स्थूल शरीर का प्रतिबिम्ब शीशे में दिखलाई देता है उस प्रकार उस सूक्ष्म निराकार ब्रह्म के रूप को दिखाई देने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, उसको नेत्र कदापि नहीं देख सकते। उसका साक्षात्करण तो ज्ञान, कर्म और भक्ति योगों की युगपत् साधना से ही केवल सम्भव है।

मुण्डोकोपनिषद् में कहा है कि प्रणव अर्थात् ओंअक्षर के जाप रूप धेनुष्य पर आत्मा रूपी तीर का संधान कर ब्रह्म रूपी लक्ष्य का बेध किया जा सकता है यथा प्रणवोधनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते'। प्रणव का अर्थ बोध पूर्वक जाप ही उस ब्रह्म की प्राप्ति में साधन है, मूर्त्ति पूजा कदापि नहीं।

मुण्डकोपनिषद् ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है कि—सत्येन लभ्य तपसा ह्येष आत्मा सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्म चर्येण नित्यम्॥

अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति का साधन चतुष्टय सत्य-

तप-ज्ञान ब्रह्मचर्य है मूर्त्ति-पूजा नहीं। ज्ञानी ध्यानी लोक पाप वासनाओं से ऊपर उठकर उस दिव्य परम पवित्र ज्योति का अपने अन्दर साक्षात् कर सकते हैं बाहर के मूर्त्ति आदि द्रव्यों में नहीं।

परमात्मा महती ज्ञान-बल और क्रियाओं से युक्त है यह सारा संसार उसकी अपार महिमा का पसारा है। निराकार होने से उसकी किसी भी प्रकार की प्रतिमा (मूर्त्ति) फोटो आदि हो नहीं सकती। उसको नीचे ऊपर और मध्य में कोई ग्रहण भी नहीं कर सकता। ऐसा स्पष्ट शब्दों में श्वेताश्वतर उपनिषद् बतलाता है यथा—

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः ॥१९-५

परमात्मा का दर्शन यदि कोई मूर्त्ति में करना चाहे तो यह उसकी भारी भूल है। उस अलख निरञ्जन नाथ का दर्शन करने के लिये मानव को अपनी देह नीचे की अरणि और प्रणव अर्थात् 'ओं' अक्षर के जाप को उत्तरारणि बना कर ध्यान योग द्वारा निरन्तर मन्थन करना होगा तब ही वह हृदय रूपी गुफा में छिपी हुई आत्मा की गहराई में उस का दर्शन किया जा सकेगा। मूर्त्ति आदि में दर्शन करने की बात करना पागल की बौखलाहट के समान है यथा—

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत् ॥१४-१

इसी अध्याय में आगे उपनिषद्कार ने स्पष्ट कहा है कि वह सर्वव्यापी भगवान् ने तो दूध में मक्खन की भाँति गुप्त रूप से रमा हुआ है। आत्म-विद्या अर्थात् अध्यात्म-ज्ञान तथा यमनियम प्राणायाम आदि साधना द्वारा ही उसको पाया जा सकता है। घण्टा घड़ियाल बजाने और धूप दीप नैवेद्य तथा पान पुष्प पुँगी फल से मूर्त्ति का पूजन करने से भगवान् का दर्शन त्रिकाल में भी सम्भव नहीं।

वह परमात्मा तो सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है। प्रत्येक प्राणी की हृदय रूपी गुफा में छिपा हुआ है। क्लेश कर्मों से छुटकारा पाकर यह जीवात्मा अपनी निर्मल ज्योतिष्मती बुद्धि की सहायता से उस दिव्य देव का दर्शन अपने अन्दर ही कर सकता है बाह्य मूर्त्ति आदि जड़ जगत् में उसका दर्शन असम्भव है। यथा—

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायामस्यजन्तोर्निहितो :।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मन।

२०-३

वह परमात्मा तो इस जड़ चेतन संसार से सूक्ष्मतम होने के कारण बहुत ऊपर उठा हुआ है उसका कोई ऐसा रूप आदि नहीं जो नेत्रादि इन्द्रियों से पहिचाना जा सके। जो मानव ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों द्वारा उसका दर्शन स्पर्शन व अर्चन करने का पाखण्ड रचते हैं निश्चय वह अपने को धोखा देते हैं और भ्रम जाल के बन्धन में जकड़े रहते

हैं। ऐसे आत्मा को धोखा देने वाले इस दुःख सागर से कभी भी पार नहीं उतर सकते। इस आशय का निम्न श्लोक श्वेताश्वतर में विद्यमान है-

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम्। य एतद्विदुरमृतास्ते।
भवन्त्यथेतरे दुःख मेवापियन्ति ॥ १०-३

औपनिषदिक् साहित्य का मन्थन करने के उपरान्त स्पष्ट रूप से यह घोषणा की जा सकती है कि परमात्मा की प्राप्ति का इस मूर्ति पूजन रूपी पाखण्ड से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। यह मूर्ति पूजन तो निश्चय मानव को अज्ञान के गहरे गर्त में गिराने वाला है।

आर्य युवकों का आवाहन

अखिल भारतीय आर्ययुवक परिषद् ने देश के सभी आर्य युवकों एवं आर्य कुमारों का आवाहन किया है कि वह अधिकाधिक संख्या में वाराणसी पहुंच कर 'काशी शास्त्रार्थ शताब्दी समारोह' में स्वयं सेवक के रूप में सहयोग दें।

परिषद् उत्तर प्रदेश की समस्त शाखाओं को आदेश देती है कि तन-मन-धन से आर्य प्रतिनिधि सभा [यू० पी०] को सक्रिय सहयोग प्रदान करें।

परिषद् ने श्री प्रकाश नारायण शास्त्री को काशी शास्त्रार्थ शती समिति का संयोजक चुना है।

संयोजक कार्यालय—सी० १५/३६७ लल्लापुरा वाराणसी

सुदर्शन कुमार चौहान, बम्बई महासचिव

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान जयन्ती २५ दिसम्बर को

नई दिल्ली ६ दिसम्बर।

दिल्ली राज्य की सभी आर्यसमाजों तथा आर्य संस्थाओं की ओर से आर्य केन्द्रीय सभा दिल्ली राज्य के तत्वावधान में अमर हुतात्मा पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी की ४३वीं बलिदान जयन्ती बृहस्पतिवार, २५ दिसम्बर को बड़े समारोह से मनाई जाएगी।

उस दिन १० ॥ बजे से श्रद्धनन्द बलिदान भवन, श्रद्धानन्द बाजार, से हवन-यज्ञ आरम्भ होगा और ठीक १२ बजे दोपहर एक विशाल जलूस वहाँ से चलेगा। जलूस खारी बावली, नयाबांस, लालकुआँ, हौजकाजी, चावड़ी बाजार, नई सड़क, चांदनी चौक, दरीबा, एस्प्लेनेड रोड होता हुआ सायं ४ बजे गान्धी ग्राउण्ड में समाप्त होगा, जहां एक विराट सार्वजनिक सभा होगी। जिसमें अनेक आर्य एवं राष्ट्रीय नेता शहीद संन्यासी के चरणों में श्रद्धा-सुमन भेंट करेंगे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपना खून देकर आर्य हिन्दू जाति में नए रक्त का संचार किया था। अतः मन्त्री, आर्य केन्द्रीय सभा, हिन्दूमात्र से इस में सम्मिलत होने का अनुरोध करते हैं।

ओम्प्रकाश मन्त्री,
आर्य केन्द्रीय सभा, दिल्ली राज्य
१५, हनुमान रोड, नई दिल्ली।

मूर्ति-पूजा को संसार से मिटाने के सरल उपाय

श्री वेदानन्द जी वेदवागीश, प्रस्तोता श्रीमद्दयानन्दार्ष
विद्यापीठ झज्जर गुरुकुलम्

मूर्त्ति पूजा विदेशों में कितनी है और किन-किन रूपों में है, मुझे यह ज्ञान नहीं है। अतः संसार की बात छोड़कर मैं अपने देश में मूर्त्ति-पूजन और पत्थर को ही भगवान् मान-कर पूजने में प्रवृत्त हुए प्रायः भारतीयों के हृदय से यह विपरीत भावना कैसे मिटे, इसी पर विचार करते हेतु कुछ लिखने लगा हूं। सर्वप्रथम हमें यह देखना होगा की मूर्त्ति-पूजा की प्रेरणा किन स्रोतों से मिल रही है। जहाँ तक समझ में आता है उसके नीचे लिखे कारण प्रतीत होते हैं—

[१] विद्यालयों की पुस्तकों में मूर्त्ति-पूजा के पाठों का पाया जाना।

[२] अध्यापकों का मूर्त्तिपूजक होना।

[३] माता-पिता का मूर्त्ति पूजक होना।

[४] मूर्त्ति-पूजा को लेकर सर्वत्र कथाओं का चलना।

[५] स्थान-स्थान पर मूर्त्ति-पूजक साधुओं के मठों का होना।

[६] मूर्त्ति-पजा विषयक ग्रन्थों का विद्यमान रहना।
[७] मूर्त्ति-पूजक गुरुओं एवं न पूजने वालों में शास्त्रार्थों का न होना।
[८] राज्य का अवैदिक होना।

इन कारणों के रहते मूर्त्ति-पूजा का सर्वथा अभाव किया जाना दुष्कर है। इसलिये इन्हीं पर विचार कर लेना मूर्त्ति-पजा के निवारण में कुछ दिशा प्रदान करेगा।

सब से पहले बात यह ही है कि जिन महर्षि दयानन्द ने मूर्त्ति-पूजा में अपने लिये घोर अविश्वास उत्पन्न किया था। उनके सम्मुख भी प्राय: ये ही कारण विद्यमान थे और वे इन कारणों के निवारण में प्रयत्न करते हुए सफल भी हुये एवं आगे आने वाली सन्तति को निर्देश भी कर गये—

परिणाम स्वरूप महर्षि के पश्चात् आर्यसमाज पर्याप्त विकाश में आया और उसने वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार का भरसक प्रयास भी किया, जिसमें उसे सफलता मिली भी। संसार ने उसकी बातों को जाना, समझा और कार्य रूप में परिणत किया। वे ठीक निकलीं। यह सब कुछ होते हुये भी इतर समुदाय के लोगों ने स्वयं में और आर्यसमाज में कोई विशेष अन्तर नहीं देखा; अपितु कुछ रूखा पन आर्यसमाज में अधिक दिखाई दिया। इतनी बात अवश्य है कि वे आर्य-समाज का, हिन्दुत्व की रक्षा करने में विद्वत्ता में लोहा मानते हैं; पर दूसरे पक्ष में आर्यसमाज के मन्तव्यों से आर्यसमाज

के जीवन में शान्ति की धारा बह गयी हो, वह उन्हें देखने को नहीं मिला। प्रत्येक बात परिणाम को सोच कर की जाती है। मूर्त्ति-पूजा में उन्हें कुछ रस प्रतीत होता है। आर्यसमाज भले ही अपने को आस्तिक मानता हो; पर उन्हें निराकार ईश्वर मानने वालों और ईश्वर सर्वथा ही न मानने वालों में भेद दिखाई नहीं देता। आर्यसमाज में कुछ विशेष घटनाएँ आध्यात्मिकता की दीखें तो वे नास्तिकों से और अपने से आर्यसमाज को ऊँचा मानकर आकर्षित अवश्य हो जावें। फूल की सुगन्ध रोकी नहीं जा सकती, वह बरबस अपनी ओर गन्ध लोलुपों को खींच ही लिया करती है। ऐसी भीनी सुगन्ध आर्यसमाज से नहीं आयी। संसार शान्ति चाहता है; पर जिस आर्यसमाज से शान्ति की आशा थी, वह स्वयं उन्हें अशान्ति के कगार पर खड़ा दिखाई देता है।

अब मैं उन उपायों को लेता हूं, जिनकी अवहेलना करके आर्यसमाज ने इस आध्यात्मिक क्षेत्र में अपना प्रभाव कम कर लिया है। उनकी तिरस्क्रिया न किया जाना ही मूर्त्ति-पूजा को अन्य वर्गों से हटायेगा

मूर्त्ति-पूजा को दूर करने में सब से पहला उपाय ब्रह्मचर्याश्रम में दीक्षित होना है। इस आश्रम में निहित विद्याध्ययन के साथ-साथ महर्षि ने प्रतिदिन न्यून से न्यून एक घण्टा योगाभ्यास करने के लिये सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में ब्रह्मचारियों को आदेश दिया है। मुझे जहाँ

तक जानकारी है, ऋषि निर्दिष्ट पद्धति से चलने वाले गुरुकुल भी इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। इसे एक ढोंग समझते हैं।

इसके न अपनाने से जो प्रतिफल सामने आया है वह यह है कि ब्रह्मचारी के हृदय में अध्यात्म प्रकाश नहीं आ पाता। उसके अभाव में सन्ध्या-हवन भी नीरस-सा प्रतीत होने लगता है। इसीलिए गुरुकुल से चले जाने के पश्चात् बचा कुचा यह सन्ध्या-हवन भी वे छोड़ देते हैं। इतना होने पर आध्यात्मिक दृष्टि से अब जीवन में रह ही क्या गया, जिससे कि दूसरा समाज आकर्षित होवे। वाणी में आस्तिकता भले ही हो, बाहर उसके दर्शन नहीं हो पाते। इस प्रकार जब स्वयं ही अपने कर्त्तव्यों में आस्था नहीं है, तब मूर्त्ति पूजा-निषेध के कोरे तर्क उपस्थित करके दूसरों को इस ओर कैसे प्रेरित किया जा सकता है।

अतः आत्म-निरीक्षण करते हुये एवं गुरुकुलों की स्थापना के क्षणों में निर्धारित उद्देश्यों को ध्यान में लाते हुये वही ऋषि निर्दिष्ट पाठ्य-प्रणाली अपना लेनी चाहिये। इतना तो कुछ गुरुकुलों ने अच्छा किया कि परस्पर मिलकर 'श्रीमद् दयानंद आर्षविद्यापीठ' नामकी संस्था को जन्म दिया और उसके अधीन रहकर एक ही आर्ष पाठ्य-प्रणाली स्वीकार की। केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय नई दिल्ली ने ५ दिसम्बर १९६८ से इस द्वारा सञ्चालित प्रथमा, मध्यमा शास्त्री और आचार्य परीक्षाओं को क्रमशः मिडिल, हायरसेकेण्ड्री, बी. ए.

और एम. ए. के समकक्ष स्वीकार किया। गुरुकुल पद्धति से सभी विद्यार्थी जिन गुरुकुलों में गुरु के अन्तेवासी बन छात्रावास में रहते हैं, वे ही विद्यालय, आर्ष विद्या पीठ से सम्बन्ध होते हैं। अन्यराज्य एवं भारत के विश्वविद्यालय भी इसे मान्यता प्रदान करते जा रहे हैं। मान्यता के अभाव में अनेक गुरुकुल अपना विवेक खो चुके थे, अब उनमें जीवन का सञ्चार हुआ है। नयी स्फूर्ति आयी है। गुरुकुलों के प्रति लोगों की आस्था है। इन शिक्षणालयों को अब बढ़ावा देना चाहिये। प्रत्येक आर्यसमाजी के पुत्र-पुत्रियाँ गुरुकुलों में पढ़ेंगे, तो अधिक से अधिक गुरुकुल स्थान-स्थान पर खुलेंगे। दूसरे समाज वाले भी अपने बच्चों को वहाँ पढ़ायेंगे। इस प्रकार देश के अधिक से अधिक बालक अच्छी शिक्षा से शिक्षित होंगे। मूर्ति-पूजा सम्बन्धी कोई भी ग्रन्थ उनके सम्मुख नहीं आयेगा।

अनार्ष-ग्रन्थ पढ़ाकर हम आशा लगाए बैठे हैं कि मूर्त्ति-पूजा देश से हटायेंगे। उन ग्रन्थों में ही तो भगवान् के स्वरूप को अन्यथा दर्शाया गया है। मूर्ति पूजा को हटाने के लिए विद्यार्थियों को शिक्षा भी, ऐसे गुरुकुलों में दिलानी चाहिए, जहाँ महर्षि दयानन्द के अनुसार प्रति दिन योगाभ्यास कराया जाता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि योगाभ्यास पूर्वक दी गयी शिक्षा ही राष्ट्र के उत्थान का कारण हुआ करती है। अतः गुरुकुलों में आस्था न दिखाकर अन्यत्र बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करना बच्चे को ईसाई बनाएगा, नास्तिक बनायेगा अथवा मूर्त्ति-पूजक बनाएगा।

गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचारी के प्रवेश किये जाने पर ऋषि ने गार्हस्थ्य धर्मों में फिर सङ्केत किया है कि गृहस्थ को एकान्त जङ्गल में जाकर सूर्योदय पर्यन्त वा घड़ी आध घड़ी दिन चढ़े तक योगाभ्यास करना चाहिए। अब विचारणीय यह है कि हममें कितने ऐसे हैं, जो इस नियम को निभाते हैं, जिसको देखकर दूसरा वर्ग आकर्षित हो।

नगरों में रहते हुये कहीं बाहर जङ्गल जाना सुविधा-जनक नहीं है। अतः आवश्यक है कि उपासना का घर में पृथक स्थान बनावें। मैंने पौराणिक कहे जाने वाले बहुत-से ब्राह्मणों को देखा है कि वे घर में उपासना का पृथक् स्थान बनाए हुये हैं और उसमें बैठ के प्रति दिन दो तीन घण्टे तक, जो भी उन्हें मन्तव्य है, उसके अनुसार जप आदि करते हैं। इस में उन्हें कुछ शान्ति भी मिलती है। अन्यथा वे उसे करना छोड़ दें। बिना किसी प्रकार की उपलब्धि के कोई क्रिया निरन्तर जारी नहीं रक्खी जा सकती।

यदि ब्रह्मचर्याश्रम में ऋषि की आज्ञा मानी गयी हो, तो गृहस्थाश्रम में भी माने जाने की संभावना है। इसके अभाव में अपना जीवन कुछ न रहने से लोग हमारी ओर आकर्षित नहीं होते। जब आर्यसमाज ही ईश्वर को निराकार मान कर पारस्परिक कलह में फँसा है, कोई समाधान नहीं खोजपाता; तब दूसरे लोग इसको कैसे सुन सकते वा इससे लाभान्वित हो सकते हैं।

योगाभ्यास वह अचूक औषध है, जो मनुष्य के मनो-विकारों को प्रत्यक्ष रूप में सम्मुख लाकर खड़ा कर देता है। उन विकारों को मिटाने में आई हुई कठिनाइयों का अनुभवी मनुष्य दूसरों पर दयाभाव करना स्वतः सीख जाता है; क्योंकि वह अपने समान ही दूसरों को भी विकारों का दास बना हुआ देखता है। जब स्वयं ही उनके दासत्व से छूटने में अशक्त है, तो दूसरों पर अधिक बल देने का अधिकारी नहीं रहता। अपने शोधन के अभाव मे मानव को अपने दुर्गुण दिखाई नहीं देते और वह स्वयं को बड़ा समझ-कर अच्छे अच्छों की अवहेलना करता रहता है, जो झगड़ों की जड़ हुआ करती है।

यदि आर्य गृहस्थ, योग पद्धति का सञ्चार जीवन में करलें, तो पारस्परिक विद्वेष की ज्वाला शान्त होगी और दूसरे वर्ग के लोग इन सिद्धान्तों में तथ्य जानकर इस ओर आकृष्ट होंगे। मूर्त्ति-पूजा भी छोड़ देंगे।

तीसरा उपाय मूर्त्ति-पूजा के निर्मूल करने का वान प्रस्थ आश्रम है। जिस व्यक्ति के इनसे पूर्व के आश्रम शास्त्रोक्त बीते हैं, वह ही वस्तुतः वनस्थ बनने में उत्साह दिखा सकता है। यह वह आश्रम है जो जङ्गल में डेरा लगाकर योगाभ्यास से अपना जीवन उच्च करते हुये लोगों के लिए आलोक बना करता है। जङ्गल से तात्पर्य ऐसे स्थान से नहीं है, जहाँ मनुष्य की पद-चाप भी सुनाई न देती हो। साधारण भाषा

में जङ्गल नगर वा ग्राम से बाहर के स्थान में व्यवहृत होता है।

आर्य वनप्रस्थों से इतर लोग स्थान-स्थान पर साधुओं के रूप में मठ बनाए बैठे हैं। ये एकान्त जङ्गल में भी हैं और नगर बस्तियों में भी। आर्य वनस्थ यदि स्थान-स्थान पर ऐसे बैठे जावें, तो जैसे जनता उन सन्तों के पास जाती है, इनके समीप भी पहुंचेगी। इस प्रकार जितने स्थान आर्य वनप्रस्थों के बढ़ते जावेंगे; उतने ही इतर जनों के कम होते चले जावेंगे। इतना ही नहीं वे कालान्तर में उच्छिन्न भी हो जावेंगे। क्योंकि परस्पर की विरुद्ध विचार धारा में वे टिक नहीं सकेंगे। इस प्रकार मूर्त्ति-पूजा-से उलटी मतियां जनता की बनाई जा सकती हैं।

चौथा उपाय मूर्त्ति-पूजा के निर्वतन का संन्यास आश्रम है। वेद के अनुसार संन्यासियों को घरों में जाकर भी गृहस्थों को उपदेश करने का विधान है। पहले तो आर्यसमाज के साधु अन्यसाधुओं की अपेक्षा नगण्य हैं। जो हैं, उन्होंने अपने-अपने अनुकूल कार्य संभाल रक्खे हैं; क्योंकि आर्य कहे जाने वाले जन प्रायः संन्यासी का आदर नहीं करते। इस लिये वे वहाँ जाते भी नहीं हैं। यह ठीक है कि संन्यासी को मान-अपमान से ऊँचा उठना चाहिए; परन्तु यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि किसी को प्रसह्य उपदेश के घूंट भी नहीं पिलाये जा सकते। विचार धारा न मिलने से अन्यत्र चाहे संन्यासी का अपमान भले ही हो, वह सहन किया जा सकता है; किन्तु जब अपने ही निरादर से काम लें, तो यह अवांछनीय है। ऐसी अनास्था में विशेष कारण यह है कि आर्य

गृहस्थों ने वैदिक कृत्य करने छोड़ दिये हैं। न वे घरों में बच्चों को साथ बिठाकर प्रति दिन संन्ध्या करते हैं, न हवन और न ही वेद-दर्शन उपनिषद आदि ग्रंथों का स्वाध्याय करते हैं। जब ऐसा नहीं करते, तो न कोई उन्हें शङ्का उठती है, जिसका समाधान पाने के लिए किसी अतिथि संन्यासी की वह प्रतीक्षा करें स्वाध्याय के अभाव में अपनी त्रुटियाँ सम्मुख आने के कारण स्वयं को पंडित माने बैठे रहते हैं और स्वेच्छा का सिद्धान्त जो वेदविरुद्ध होता है, प्रचारित करते रहते हैं। ऐसे आर्य गृहस्थ के आस-पास पड़ोस में रहने वाले इतर धर्मानुयायियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वे अपने को उस आर्य से अच्छा ही समझ अपनी मूर्त्ति-पूजा में ही लगे रहना अच्छा समझते हैं।

आर्य गृहस्थों की ऐसी कर्त्तव्य विमुखता से दूसरी ओर एक यह भी हानि हो रही है कि संन्यासी लोगों ने भी स्वाध्याय छोड़ दिया है। जब उनसे कोई शङ्का करने वाला ही नहीं है, तब वे भी अपने को सिद्ध समझकर आराम से बैठ जाते हैं। अथवा किसी पौराणिक स्थान का ही आश्रय पकड़ लेते हैं। बहुत कम ऐसे मिलेंगे, जो सब कुछ सहते हुये उपकार में लगे हैं। इसलिए यही कहना पड़ता है कि वैदिक परम्परा से थोड़ा-बहुत विचलित सब हैं।

आर्य गृहस्थों के स्वाध्याय से लाभ यह भी होगा, कि जब स्वाध्याय काल में उठी शङ्का की निवृत्ति के लिये संन्यासियों की उन्हें अपेक्षा होगी, तब संन्यासियों का आदर होने से संन्यासाश्रम में अधिक जन दीक्षित होंगे और उन्हें संन्यास की योग्यता के लिए अच्छा विद्वान् बनना पड़ेगा।

पांचवां उपाय यह है कि गृहस्थ जन एक-दो दिन वा अधिक समय तक के लिए किसी सुविधा जनक स्थान पर वेदादि शास्त्रों की कथाएँ भी रख सकते हैं, जिनमें पास के परिवारों को विशेष आमंत्रित किया जासकता है। वहाँ मूर्त्ति-पूजकों को विशेष रूप से बुलाना चाहिए। संभव है कोई यह समझले, कि वे हमारे बुलाने से नहीं आवेगें, ऐसी बात नहीं है। क्या पता वे भी यह समझ लें, कि हमें तो कोई बुलाता ही नहीं, इसलिए इन आर्यसमाजियों का अपना ही कुछ कर्म-धर्म है। इस प्रकार की बातें ही एक-दूसरे को बहुत दूर करती चली जाती हैं।

जहाँ देश में इतना सुसंस्कृत क्रिया कलाप चलेगा, मनुष्यों की विचार परम्परा में परिवर्तन आने से मूर्त्ति-पूजा के प्रतिपादक ग्रन्थ भी धीरे-धीरे कम संख्या में दिखाई देने लगेंगे। माल की माग पर ही उत्पादन हुआ करता है।

किन्तु हठी लोग भी संसार में बहुत होते हैं, जिनका अभाव किसी भी काल में नहीं किया जा सकता। वे मूर्त्ति-पूजा के समर्थन से न स्वयं हटेंगे और न ही दूसरे को हटाने देंगें अपितु अवैदिक ग्रंथों का भी अधिक से अधिक सस्ते मूल्य में उत्पादन करके जनता को सुलभ करायेंगे, ऐसे चोटी के दुराग्रहियों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा जाना मूर्त्ति-पूजा निवारण में छठा उपाय है। यदि शास्त्रसमर में वे न आवें, तो भी उनके पराजय वा भयभीत हो जाने के विज्ञापन

चिपकवादिये जावें। ऐसी घटनाओं से फिर दुराग्रहियों की दाल नहीं गलती और उनके अनुयायी भी, पराङ्मुख होने लगते हैं।

जितनी जनता वैदिक विचारों की बनती जावेंगी, उतनी ही वैदिक राज्य होने की सम्भावनाएँ बढ़ती जावेंगी, इसके अभाव में घुणाक्षरन्याय से यदि वैदिक राज्य हो भी जावे, तो लोक तन्त्र में उसका पनपना कठिन ही है।

व्यापारिक पक्ष लेकर मूर्त्ति-पूजा निवारण में कुछ पङ्क्तियाँ लिखी हैं, इससे अतिरिक्त किन्हीं और भी उपायों का आश्रय लिया जा सकता है मूर्त्ति-पूजा के जो कारण इस लेख के आरम्भ में दिखाये थे मैं समझता हूं उनका निवारण इन पङ्क्तियों में हो गया है।

अतः आर्य कहलाना है, तो ऋषि प्रदर्शित मार्ग ही पकड़ना होगा और वह भी पहले अपने जीवन से ही आरम्भ करना पड़ेगा अन्यथा सब कुछ वाणी विलास ही है।

सार्वदेशिक आ. प्र. सभा देहली की सूचना

आर्य सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली ने निश्चय किया है कि ईसाई प्रचार विरोधी सप्ताह दिसम्बर के अंत में न मनाकर फरवरी सन् १९७० में मनाया जावे। निश्चित तिथियों की सूचना बाद में दी जायगी।

उमेशचन्द्र स्नातक उप मन्त्री, सभा

महर्षि दयानन्द तथा मूर्ति-पूजा

[श्री जगदीशचन्द्र 'वसु' सिद्धान्तालंकार, नरवाना]

साप्ताहिक आर्यमित्र में यह समाचार पढ़कर अत्यन्त हार्दिक प्रसन्नता हुई कि 'महर्षि दयानन्द काशी शास्त्रार्थ शताब्दी के उपलक्ष में आर्य जगत का प्रसिद्ध व लोकप्रिय साप्ताहिक 'आर्य मित्र' 'मूर्त्ति-पूजा निषेधांक' प्रकाशित कर रहा है। तदर्थ आर्यमित्र परिवार विशेष धन्यवाद का पात्र है।

यदि हम निष्पक्ष भाव से विचार करें तो मानना ही पड़ेगा कि भारत के पतन का प्रमुख कारण भारत में मूर्त्ति-पूजा है। इसी मूर्त्ति-पूजा ने इस पवित्र महान् आर्यावर्त देश को पराधीन करने में सहायता दी। इतिहास का विद्यार्थी पूर्ण रूप से जानता है कि मौहम्मद गजनी ने इस आर्यावर्त देश (भारत वर्ष देश)को अपने अधीन करने के लिये १७ (सत्रह) बार आक्रमण किया। और अन्त में इस महान् पवित्र देश को जीतने में सफल हुआ। इसी प्रकार अनेक आक्रमण हुये जो सफल भी हुये और असफल भी। आज संसार का निष्पक्ष विचारवान मननशील विद्वान् मूर्त्ति-पूजा को कोई महत्त्व नहीं देता, वह समझता है कि भारत के पतन का प्रमुख कारण भारत में विद्यमान मूर्त्ति-पूजा (जड़ पूजा)

हैं। हमें एक पौराणिक विद्वान् प्रोफेसर से वार्तालाप करने का अवसर मिला। विषय यही भारत के पतन का कारण मूर्त्ति-पूजा था। विद्वान् महोदय को यह कहना ही पड़ा कि वास्तव में मूर्त्ति-पूजा (जड़-पूजा ही इस आर्यावर्त देश के पतन का प्रमुख कारण है।

पं० मदन मोहन जी मालवीय जो सनातन धर्म के स्तंभ कहे जाते थे। उन्होने सनातन धर्म सभा लाहौर के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देते हुये गरज कर कहा था कि 'इस विद्वत् मण्डली में कोई ऐसा पं० है जो कि मुझे वेद शास्त्र' उपनिषदों में मूर्त्ति-पूजा दिखाये ?। हमारे धर्म में कहीं भी मूर्त्ति-पूजा को आवश्यक नहीं बतलाया गया' इत्यादि इसी प्रकार पौराणिक मत के प्रसिद्ध विद्वान् पं० गोपीचन्द ने अपने उर्दू समाचार पत्र 'अखबार आम' में लाहोर में तो मूर्त्ति-पूजा का खण्डन करने में आर्य समाजियों को भी मात कर दिया,। आपने उसमें लिखा था कि—

गुनाह वो मसियत क्या है खुदा से सरकशी करना।
बुतों को सर झुकाना गिड़गिड़ाना आजजी करना॥

इत्यादि।

सनातन धर्म के एक अन्य विद्वान् हुये हैं जिनका नाम था स्वामी दयानंद बी० ए० जिनको सनातन धर्मी जगत् अपना स्तंभ मानता है। उन्होंने एक बार कानपुर की विशाल सभा में व्याख्यान करते हुये कहा था कि 'मूर्त्ति-पूजा (जड़-पूजा) कुछ नहीं लड़ाई झगड़े की बातें है। सच्ची मूर्त्ति

अर्थात् विराट परमात्मा के पुजारी बनो जिसको कि हम उसके गुणों के द्वारा ध्यान में ला सकते' ईत्यादि प्रमाणों से जाना जा सकता है कि आज का पौराणिक जगत् मूर्त्ति-पूजा पर विश्वास नहीं करता और न ही उसके द्वारा उपलब्ध होने वाली सुख शान्ति को ही स्वीकार करता है।

महर्षि दयानंद सरस्वती जी महाराज के आगमन से पूर्व पौराणिक जगत् वेद में मूर्त्ति-पूजा को सिद्ध करता था। और कहता था कि मूर्त्ति-पूजा वेदानुकूल है लेकिन आज का विचारवान मननशील विद्वान् यह मानने को तैयार नहीं।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रथम सेनानी, वेदोद्धारक, पतितपावन, आदित्य ब्रह्मचारी, महामानवता के अमर पुजारी महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने भी अपना सम्पूर्ण जीवन वैदिक-धर्म के प्रचार व प्रसार में व्यतीत किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने जहाँ हमें पूर्ण स्वतंत्रता दिलाई वहाँ उन्होंने हमें यह भी बताया कि भारत के पतन का कारण भारत में विद्यमान मर्त्ति-पूजा है। इस मूर्त्ति-पूजा ने अपने देश को खोखला कर दिया।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में मूर्त्ति-पूजा का जोरदार शब्दों में खण्डन किया है, वेद द्वारा यह सिद्ध किया है कि किसी भी मनुष्य को मूर्त्ति-पूजा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि

यह वेद विरुद्ध है यही भारत के पतन का प्रमुख कारण है, इसी मूर्त्ति-पूजा ने इस आर्यावर्त्त देश को रसातल में पहुंचा दिया जबतक इस आर्यावर्त्त देश से मूर्त्ति-पूजा समाप्त नहीं होती तब तक हमारा यह शिरोमणि देश किसी भी प्रकार उन्नति नहीं कर सकता। उन्होंने युक्ति प्रामण दलील से अपने सत्यार्थ प्रकाश में मूर्त्ति-पूजा से होने वाली अनेक प्रकार की हानियाँ दर्शायी है जिनका कि संसार का कोई भी व्यक्ति आज तक खण्डन नहीं कर सका। इस विषय में महर्षि भगवान् दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने अनेक व्याख्यान दिये तथा शास्त्रार्थ किये, जिसमें महर्षि सफल हुये, महर्षि ने जहाँ मूर्त्ति-पूजा के विरुद्ध अनेक शास्त्रार्थ किये, उनमे से काशी शास्त्रार्थ तथा कर्णवास शास्त्रार्थ (जो हीरा बल्लभ शास्त्री से शास्त्रार्थ किया था) प्रसिद्ध है। वहाँ उन्होंने संसार को चेतावनी देते हुये घोषणा की थी कि हे संसार के लोगो। यदि अपने जीवन को सुख शान्ति एवं आनन्दमय बनाना चाहते हो तथा वैदिक संस्कृति की एवं देश जाति की रक्षा करना चाहते हो तो (बैक टू दि वेदाज्) अर्थात् वेदों की ओर लौटों। वेद मार्ग पर ही चलने से तुम्हारा कल्याण व उद्धार हो सकता है 'नान्यपन्था विद्यते ऽयनाय' अर्थात् और दूसरा कोई मार्ग नहीं है। महर्षि वेद को ईश्वरीय ज्ञान तथा स्वतः प्रमाण मानते थे। इसीलिये ईश्वरीय वाणी वेद के ही प्रचार व प्रसार में अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पण कर दिया। उन्होंने इस आधार पर कि 'न तस्य प्रतिमा अस्ति तस्य नाम

महच्छशा' के सिद्धान्त को लेकर मूर्त्ति-पूजा का महान् खण्डन किया।

हम यहाँ महर्षि के (कुछ) व्याख्यानों के कुछ अंश उद्धृत करते हैं, जो मूर्त्ति-पूजा खण्डन से सम्बन्धित हैं।

१—यह घटना सन् १८६९ की है, काशी में महर्षि स्वामी दयानन्द जी के पास रात्री में एक प्रसिद्ध पण्डित आकर बोले की स्वामी जी यदि आप मूर्त्ति-पूजा का खण्डन करना छोड़ दें तो हम (काशी की पण्डित मण्डली) आपको अवतार मान लेंगे। परन्तु महर्षि ने इस प्रस्ताव् को ठुकरा दिया।

२—सूरत में-जेठालाल नामक वकील ने महर्षि से कहा कि 'यदि आप मूर्त्ति-पूजा का मण्डन करने लगें तो हम आपको शंकर का अवतार मान लेंगे'। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'मुझे ऐसे प्रलोभनों से कोई भी सत्य से नहीं हटा सकता' इत्यादि।

३—काशी में-काशी नरेश ने कहा था कि यदि मूर्त्ति-पूजा का प्रतिवाद करना आप छोड़ दें तो मै आप को गुरू मान लूँ और छत्र चढ़ाऊँ। स्वामी जी महाराज ने इसको भी अस्वीकार कर दिया। इत्यादि,वाक्यों को हम पढ़कर सहज ही में ही जान सकते हैं कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज को अनेक पण्डितों ने तथा राजा महाराजओं ने अनेक प्रकार से प्रलोचन दिया था, परन्तु महर्षि अपने वेदोक्त सत्य मार्ग से कभी भी विचलित नहीं हुये। कहा भी है कि 'महाजनों येन

गतः स पन्था' अर्थात् महाजन-विद्वान्, ज्ञानी, महात्मा धीर पुरुष कभी भी अपने मार्ग से विचलित नहीं होते। अन्त में हम यही कहना चाहते हैं कि भारत के पतन का कारण (जड़ पूजा-पत्थर-पूजा) मूर्त्ति-पूजा ही हैं, भारत पर लगे इस मूर्त्ति-पूजा के कलंक को जब तक दूर नहीं किया जायेगा तब तक हमारा यह देश सुख-शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। आवश्यक है कि सुख शान्ति तथा देश-जाति-धर्म तथा संस्कृति की रक्षा के लिये हमें इस भारत से मूर्त्ति-पूजा को बहिष्कृत करना होगा, तभी देश बचेगा। अन्यथा नहीं। अलमितिविस्तरेण।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का निश्चय

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली की अन्तरङ्ग सभा के निश्चय किया है कि २३ से २८ दिसम्बर१९६९ को होने वाले महर्षि दयानन्द काशी शास्त्रार्थ एवं पाखण्डखण्डिनी पताका शताब्दी' समारोह आर्यों के सार्वजनिक, सार्वभौम महोत्सव हैं। उन्हें सफल बनाने के लिए आर्यजनता को तन, मन, धन से सहयोग देना चाहिये और आर्य समाज की शक्ति का विराट् प्रदर्शन करने के लिये वहां अधिक से अधिकसंख्या में पहुंचना चाहिये। —मन्त्री

मूर्त्ति-पूजा और सन्त समाज

[श्री आचार्य भद्रसेन जी, अजमेर]

कई लोगों की यह धारणा है कि मूर्त्ति पूजा का चारों वेद तथा उपनिषद् आदि ग्रन्थों में भले ही खण्डन किया गया हो, किन्तु मध्य कालीन सन्तों के युग में बहुत कम ऐसे सार हुए हैं, जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में मूर्त्ति पूजा का खण्डन किया हो। ऐसे लोगों की यह भ्रान्त धारणा है। मेरे विचार में सन्तों में भी बहुत कम ऐसे सन्त हुए हैं। जिन्होंने कि मूर्ति-पूजा का स्पष्ट रूप से खण्डन न किया हो अब हम कुछ प्रसिद्ध सन्तों के विचार प्रिय पाठकों के सम्मुख उपस्थित करेंगे।

१—श्री गुरुनानक जी के मूर्त्ति पूजा के खण्डन में कुछ विचार देखें।

जो पत्थर को माने देवा,
उसकी वृथा जावे सेवा।

मूर्त्ति पूजा का मूल स्रोत अवतारवाद हैं। अब जरा अवतार वाद के सम्बन्ध में श्री गुरु नानक के विचार देखिये।

एको सिमिरिये नानका जो जल थल में रहियो समा,
ये दूजा कारेंको सिमिरिये जो जन्मे ले मूर जाऐ॥

अब जरा महात्मा कबीर के मूर्त्ति पूजा सम्बन्धित

विचारों को पढ़िये—

पत्थर पूजे हर मिलें मैं पूजूँ पहाड़।
पत्थर से चक्की भली जो पीस खाये संसार॥

अवतार वाद का तो महात्मा कबीर ने बड़े स्पष्ट शब्दों में नाम निर्देश पूर्वक खण्डन किया है। जैसा कि वे अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ बीजक कबीर दास में लिखते हैं—

दशरथ कुल अवतरी नहीं आया।
नहि लंका के राय विताया॥
नीह देवकी के गर्भ हि आया।
नहि यशोदा गोद खिलाया॥
पृथिवी रमण दमन नहि करिया।
पैठि पाताल बलि नहि छलिया॥
नहि बलि राय सों माड़ी रारी।
नहिं हिरनाकुस बध लछारी।
वराहरूप धरणी नहि धरिया॥
क्षत्रि मारि निक्षत्र नहि करिया।
नहि गोवर्धन करतै धरिया॥
नहि गवाल संग बन बन फिरिया।
द्वारवती शरीर न छाड़ा॥
लें जगन्नाथ पिंड नहि गाड़ा।
कहें कबीर पुकार के वा पंथे मत भूल॥
गेहि राखे अनुमान करि थूल नहि अस्थूल।

बीजक कबीर दास रमेनी ७५

महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध सन्त समर्थ गुरु राम दास जी प्रभु के नाम स्मरण को ही सच्ची भक्ति बताकर मूर्त्ति पूजा का खण्डन करते हुए आगे लिखते हैं। यह आप उनके ही सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'दास बोध' में मराठी भाषा में पढ़िये।

सहज सांडूनि साधारन, हाचि कोणो एक दोष।
आत्मा सांडून अनात्म्यासध्यानी धरती॥

परितो धरिता ही धरवेना, ध्यानी देती व्यक्ति नाना।
उगेचि कष्टविती मना, कासा बीस करोनी॥
मूर्त्ति ध्यान करितां सायासे, तेथे एकाचे एक दिसे।
भासे नये तेचि भासे विलक्षण॥

अर्थात् मनुष्यों के अन्दर यही एक भारी दोष है, कि वे उपयक्त मेरे दर्शाये प्रभु नाम स्मरण के सुगम ध्यान को छोड़ कर अनात्मा अर्थात् जड़ मूर्त्ति आदि का ध्यान करने लगते हैं। वास्तव में वे मूर्त्ति द्वारा भगवान् का ध्यान ही नहीं कर पाते। पूजा करते समय उनको नाना मूर्त्तियां दीखने लगती हैं। जो कि उपासना के मन को डांवांडोल कर देती हैं। अतः व्यर्थ ही उपासक के हृदय को कष्ट देने का कारण बनती हैं। कष्ट साध्य मूर्त्ति का ध्यान करते समय उपासक को कुछ और का और ही दीखने लगता है, जिसका उस समय भाग ही नहीं होना चाहिये वह भी भासने लगता है। जो कि उपासक के मन को चंचल तथा दुःखी बना देता है, इस प्रकार अन्य भी मूर्त्ति पूजा की हानियां दर्शाते हुए समर्थ

गुरु राम दास आगे लिखते हैं—

देवास देहधारी कल्पिती। तेथे नाना विकल्प उठती ॥
भोगने त्यागने विपत्ति देह योगे ॥

अर्थात् मूर्त्ति पूजकों के सम्मुख जहाँ अन्य कठिनायी उपस्थित होती हैं। वहाँ उन्हें परमेश्वर भी देहधारी मानना पड़ता है। उस समय उनके मन में नाना संकल्प विकल्प उठने लगते हैं, मूर्त्ति पूजकों के मन में सर्व प्रथम यह विचार उठता है कि यदि परमेश्वर ने देह धारण की होगी तो उसने किसी वस्तु का त्याग और किसी का भोग भी किया होगा। उनके शरीर पर अनेकों विपत्तियाँ भी आई होंगी, अर्थात् जो परमेश्वर किसी से राग तथा किसी वस्तु से द्वेष भी करता हो वह निर्विकार परमेश्वर कैसे ? प्रिय पाठक ! विचार करें कि मूर्त्ति पूजा तथा अवतार वाद का कितने स्पष्ट शब्दों में राम दास जी ने खण्डन किया है।

इसी प्रकार महाराष्ट्र के दूसरे प्रसिद्ध सन्त तुकाराम जी ने साकारवाद का कितने प्रबल शब्दों में खण्डन किया है। यह उन्हीं के मुखारविन्द से मराठी में सुनिये—

नाही रूप नाही तांथ नाही ढांव धराया।
जेथें जावे तेथें आहे, विट्ठल माय बहिन ॥

अर्थात् परमेश्वर ने नहीं तो कोई रूप धारण किया और नहीं कोई राम, कृष्ण आदि नाम रखाया। नहीं तो परमेश्वर ने अपने रहने का कोई निश्चित स्थान बनाया। वह मेरी माता, बहिनतां जहाँ जाते वही व्यापक होकर रम रही है।

अब जरा महाराष्ट्र के तीसरे सुप्रसिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर जी के अवतारवाद तथा मूर्त्ति पूजा के सम्बन्ध में विषद विचारों को सुनिये—वे अपने सुप्रसिद्ध गीता-भाष्य ज्ञानेश्वरी में लिखते हैं -

तैसा कृति निश्चयवायां गेला जिसा कोणी एक प्याला। मग परिणाम पाहूं लामला अमृतांये तैसे स्थूलोकारी नाशिवन्तें। मखंसा बान्धूनिचितें ॥ पाहली मज अविनाशंन्ति। तरी कैथादिसे ॥ मज आकाअ शून्य आकार। निरुपाधिचा उपचार ॥ मज विधिवर्जितां व्यवहार आचारादिक ॥ मज वर्णहीना वर्ण, गुणातीतासि गुण ॥

मज मज अचरण चरण। अपाणिया पाणी मज अमेद्या मान। सर्व गतासि स्थान

तैसा अश्रवणा श्रोत्र, मज अचक्षुसी नेत्र।
अमोत्रा गोत्रा अरूपा रूप ॥
मज अव्यक्तासि व्यक्ती। अनार्तासी आर्ती,
स्वयं तृप्ताची तृप्ती। भाविलीगा ॥
जंव आकार एक प्रढ़ो देखती।
तेव ह देव येणें भावें भजती ॥
मग तेगच बिगड़तिया टांकिली नाही म्हणोनि ज्ञानेश्वरी।

अर्थात्—हे अर्जुन ! जैसे कोई मनुष्य कांची पीकर अमृत के स्वाद की आशा करे। जिस प्रकार उनका यह प्रयत्न व्यर्थ जाता है। वैसे ही जो मनुष्य नाशवान् मूर्त्ति आदि स्थूल आकार में मुझ अविनाशी को देखने का प्रयत्न करते हैं।

उन्हें भला मैं कैसे दीखूँ। अज्ञानी जन मुझे नाशरहित के राम, कृष्ण आदि नामों का, मुझे अक्रिय के नाना प्रकार के लौकिक कर्मों का, और मुझे विदेह को खाना, पीना, सोना जागना आदि देहधर्मों का मुझ पर मिथ्या आरोप लगाते हैं। ऐसे अज्ञानी जन ही मुझ निराकार का आकार, निरुपाधि का उपचार, विधि रहित का आचार और व्यवहार, मुझ वर्णातीत के ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण, गुणातीत के गुणा अपाणिणढ़ के हाथ और पैर, अपरिमाण का परिमाण, सर्व व्यापक का स्थान, और श्रवण के श्रोत्र, अचक्षु के नेत्र, मुझ अगोत्र का गोत्र, अरूप का रूप, मुझ अव्यक्त की व्यक्ति, मुझ अनार्त की आर्ती स्वयं तृप्त की तृप्ति आदि मिथ्या कल्पित भावनाएँ मेरे सम्बन्ध में करते हैं।

ऐसे अज्ञानी जन ही जब कोई मूर्त्ति आदि आकार सामने देखते हैं। तब यह ईश्वर है, ऐसा मानकर फिर उसकी पूजा करने लगते हैं। परन्तु जब वही मूर्त्ति आदि आकार टूट-फूट जाता है। तब 'अरे ? यह तो ईश्वर ही नहीं' ऐसा मान कर बाहर फेंक देते हैं।

प्रिय पाठको यह भली प्रकार अवगत हो जाना होगा कि मध्य कालीन सन्त मूर्त्ति पूजा के कितने कट्टर विरोधी थे। कृष्ण भक्त गोरा को मूर्त्ति पूजक माना जाता है। अन्त में जिसको भी मूर्त्ति पूजा के कट्टर विरोधी निराकार उपासक भक्त रामदास को ही अपना गुरु मानना पड़ा।

शंकराचार्य द्वारा मूर्त्ति-पूजा का खण्डन

[श्री शंकराचार्य ने उपर्युक्त श्लोक अपने 'परापूजा' नामक ग्रन्थ में जड़ोपासना के सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखे हैं। ये श्लोक 'सत्यार्थ-निर्णय नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १५५, शिवस्वामी जी विरचित से उद्धृत किये गये हैं। इन श्लोकों में मूर्त्ति-पूजा का युक्ति-युक्त खण्डन किया गया है।

सम्पादक]

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम्।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घंच शुद्धस्याचमनं कुतः ॥१॥

सर्वाधारो निराधारः सर्व व्यापक ईश्वरः।
प्राणादि प्रेरकत्वेन जीवने हेतु देव च ॥२॥

अधमाः प्रतिमा पूजा स्रोत जाप्यं च मध्यमाः।
उत्तमा निगमः पूजा सोऽहं पूजा महात्मनः ॥३॥

तीर्थेषु पशु यज्ञेषु काष्ठ पाषाण मृन्मये।
प्रतिमायाम् मनो येषां ते नराः मूढ़ चेतसः ॥४॥

पाषाणस्यालये बद्धः देवः पाषाण एव च।
ब्रूहि पण्डित देवस्तु कस्मिन् स्थाने सतिष्ठति ॥५॥

स्वगृहे पायसं त्यक्त्वा भिक्षामिच्छति दुर्मतिः ।
शिलामृत दारु चित्रेषु देवता बुद्धि कल्पिता ॥६॥

निर्मलस्य कुतः स्नानम् वस्त्र विश्वोदरस्य च ।
निरालम्बस्योपवीतम्, रम्यस्याभरणम् कुतः ॥७॥

निर्लेपस्य कुतो गंन्धम्, पुष्पं निर्वासनस्य च ।
निर्गन्धस्य कुतोधूपं स्वप्रकाशस्य दीपकम् ॥८॥

नित्य तृप्तस्य नैवेद्यम् निष्कामस्य फलं कुतः ।
ताम्बूलं च विभोः कुत्र नित्यानन्दस्य दक्षिणा ॥९॥

स्वयं प्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विधिः ।
प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य चाद्वितीयस्य कानतिः ॥१०॥

अन्तर्वहिश्च पूर्णस्य क थमुद्रासनं भवेत् ।
इयमेव परापूजा शम्भोः सत्य स्वरूपिणः ॥ ११ ॥

दे हो देवालय प्रोक्तो जीवो देह सदाशिवः ।
त्यजेदज्ञानं निर्माल्यं सो ऽहं भावेन पूजयेन् ॥ १२ ॥

अर्थान्—पूर्णाश का आवाहन कैसा ? सर्वाधार के लिये आसन कैसा, स्वच्छ के लिये अर्घ पाद्य कैसा ? शुद्ध के लिये आचमन का क्या महत्त्व है ।१

वह ब्रह्म जो सर्वाधार है और निराधार है । सर्व व्यापक ईश्वर है, प्राणादि का दाता होने से जीवन का हेतु है ।२

अधम पुरुषों के लिये मूर्त्ति पूजा है, मध्यमों के लिये स्तोत्र और जाप हैं । वेद की पूजा उत्तम है और महात्माओं के लिये सोऽहं पूजा है ।३

तीर्थों में, पशु वाले यज्ञों में, काष्ठ, मिट्टी, पत्थर की प्रतिमा में जिनका मन है वे पुरुष मूढ़ बुद्धि हैं।४

पत्थरों के मन्दिर में बांधकर यह पाषाण देव है ऐसा मानकर अरे पण्डित! बतला तो सही वह देव ठहरेगा कहाँ ? ।५

अपने घर की खीर को छोड़कर दुर्मति भीख मांगता फिरता है। पत्थर, मिट्टी, और लकड़ी में देवता बुद्धि कल्पित करता है।६

जो निर्मल है उसके लिये स्नान कैसा ? सारा विश्व जिसके उदर में है उसको वस्त्र कैसे ? निरालम्ब को यज्ञोपवीत कैसा ? रम्य को आभूषण कैसे ? और किसलिये ?७

जो निर्लेप और निर्वास है उसके लिये गन्ध का क्या महत्त्व ? स्वप्रकाश स्वरूप के लिये दीपक का क्या महत्व है ? ।८

नित्य तृप्त के लिये नैवेद्य कैसा ? निष्काम के लिये फल कैसे ? विभु के लिये ताम्बूल कैसा ? नित्यानन्द के लिये दक्षिणा कैसी ? ।९

स्वयं प्रकाशमान को दीपक क्या दिखाना ? अनन्त की प्रदक्षिणा कैसी ? अद्वितीय को नमस्कार कैसा ? ।१०

भीतर बाहर पूर्ण को उद्वासन कैसा ? सत्य स्वरूप परमेश्वर की यह कैसी उपासना है ?

यह शरीर शिव मन्दिर है जीव सदा शिव है। अज्ञान रूप निर्माल्य के त्याग से ही सोऽहं भाव से पूजन करे।।२।

स्वामी दयानन्द द्वारा–

आठ गप्पों का खण्डन

माघ वदी १५ सम्वत् १९२४ को सूर्य ग्रहण था। इसलिये सहस्रों नर-नारी स्नानार्थ कर्णवास आ रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि आज जन-सागर में ज्वार-भाटा आ रहा है। स्वामी जी महाराज भी उस समय को अनुकूल समझकर अपने भोले भाले भारतवासी भाइयों को विवेकदान देने लगे। उनके चरित्र-चन्द्र की चटकीली चाँदनी पहले ही दूर-दूर तक छिटक रही थी। इसलिये मनुष्यों के झुण्ड के झुण्ड दर्शनों को आते, प्रश्न पूछते, संशय निवारण करते और उपदेश सुनकर धन्य धन्य करने लग जाते थे। उस महा मेले में लोगों के लिये कोई चित्ताकर्षक व्यक्तित्व था तो आनन्दकन्द दयानन्द, कोई दर्शनीय सुन्दर आकृति थी तो दयानन्द की मनमोहनी मधुरिमामयी मूर्त्ति, कोई श्रोतव्य वचन थे तो श्री दयानन्द महाराज के सारगर्भित रसीले सत्योपदेश। सारांश यह कि सारा मेला उन्हीं की ओर झुका पड़ा था।

स्वामी जी वमेन्दू के पेड़ के नीचे बैठे हुए धर्म-कर्म और आचार-विचार का उपदेश करते थे, साथ ही साथ वे इन आठ गप्पों का भी खण्डन करते थे।

१. प्रथम गप्प–अठारह पुराण व्यास कृत हैं ।

२. द्वितीय गप्प–मूर्त्ति पूजा उचित है ।

३. तृतीय गप्प–शैव, शाक्त और रामानुजादि सम्प्रदाय शास्त्रानुकूल हैं ।

४. चतुर्थ गप्प–तन्त्र-ग्रंथ, वाम मार्गादि धार्मिक हैं ।

५. पञ्चम गप्प–मदिरा, भाँग इत्यादि मादक वस्तुओं के सेवन में दोष नहीं है ।

६. षष्ठ गप्प—देवता और अवतार आदि के व्यभिचार मानवों के आदर्श हैं ।

७. सप्तम गप्प–चोरी करना पाप नहीं है ।

८. अष्टम गप्प–छल, कपट, अभिमान, झूंठ इत्यादि में कोई दोष नहीं है ।

स्वामी जी अपने उपदेशों और भाषणों द्वारा इन आठ गप्पों तथा इसी प्रकार की अनेक अवैदिक कपोल कल्पनाओं एवं अन्ध विश्वासों का खण्डन करते रहे । स्वामी जी का यही आग्रह था कि मनुष्यों को झूठी बातों से सावधान रहना चाहिये और अपने जीवन का विवेक पूर्ण निर्माण करना चाहिये । इस मेले में स्वामी जी ने सैकड़ों मनुष्यों को गायत्री का उपदेश दिया और इसे ही सच्चा गुरु मन्त्र बताया क्यों कि इसमें बुद्धि की पवित्रता के लिये प्रार्थना की गयी है ।

(स्वामी सत्यानन्द कृत श्री मद् दयानन्द प्रकाश)

श्री पं० भीमसेन जी का पश्चात्ताप

[श्री दिगम्बर देव]

बात सन् १९१७ की है। मेरे पिता श्री पुरुषोत्तम देव जी आयुर्वेदाचार्य्य उस समय लालसिंह मानसिंह ब्रह्मचर्य्याश्रम मैनपुरी में पढ़ाते थे। वहाँ के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष थे माननीय श्री पं० दिवाकर जी शुक्ल आचार्य्य देव वाचस्पति जो इससे पूर्व गुरुकुल वृन्दावन में थे। उस दिन पिता जी को किसी अपराध के कारण आचार्य जी ने दण्डित किया था। आचार्य के दण्डभय से प्रायः आश्रम में भूकम्प आ जाता था, कभी-कभी ऐसा अवसर भी आता था कि पौराणिकों से, वागयुद्ध भी होने लगता था और पराजित संन्यासी छात्रों के मनोरंजन की सामग्री हो जाते थे। एक दिन सब छात्र खेल में व्यस्त थे। पिता जी मुख्य द्वार पर बैठे थे कि सहसा एक वृद्ध पुरुष ने प्रवेश किया और पिता से पूछा दिवाकर कहाँ है? उन्होंने आवेश में आकर उत्तर दिया आप बड़े असभ्य प्रतीत होते हैं। वृद्ध ने गंभीर होकर कहा कैसे? तब उन्होंने उत्तर दिया आपको पूछना चाहिये था आचार्य जी कहाँ हैं। इस प्रकार की भाषा में पूछकर आप हमारे गुरुदेव का अपमान कर रहे हैं। वृद्ध एक सीतारामी उत्तरीय ओढ़े थे। पिता जी यह समझ रहे थे कि अभी वाद विवाद में पराजित होने

के पश्चात् उसे बुरी तरह भागना पड़ेगा। किन्तु शांत होकर वृद्ध ने कहा आचार्य दिवाकर जी कहाँ हैं उनके पास मुझे पहुंचाओ और तुम्हारा नाम क्या है ? पिता जी ने कहा-पुरुषोत्तम देव। कहाँ के हो ? कैथावा, इटावा। इटावा के नाम से उन्हें बड़ा हर्ष हुआ पिता जी ने पूछा आपका नाम ? उन्होंने कहा—भीमसेन इतने में पिता जी भीमसेन जी को लेकर आचार्य दिवाकर जी के कक्ष की ओर गये। इस विवाद को देखकर खेलते हुए कुछ विद्यार्थी और आ गये थे और सब के मन में एक ही धारणा थी कि अभी गुरुजी के पास पहुंचते ही वाग्युद्ध होगा। जैसे ही दिवाकर जी ने आते हुए वृद्ध पुरुष को देखा तो कक्ष से बाहर ही उनके चरणों पर गिर पड़े और संस्कृत में स्तुति करने लगे। इधर इन मनोरंजन-कारियों का बुरा हाल था। सब भाग गये। पिता जी उनका थैला थामें थे और गुरु जी का पहला क्रोध सजीव होकर इनके सामने आ खड़ा हुआ। बुरा हाल था। आगन्तुक भीमसेन कौन हैं। कैसी भाषा में शिकायत करेंगे। पुनः शरीर दण्ड भय से काँपने लगा। आगन्तुक ने दिवाकर जी को चरणों से उठाया और सिर पर हाथ रख कर 'त्वं जीव शरः शतं' का आशीष दिया और प्रसन्न मुद्रा में बोले दिवाकर, तुम्हारा यह शिष्य पुरुषोत्तम बड़ा गुरुभक्त है। गुरुजी ने कहा पुरुषोत्तम जल लाओ। पिता जी जल ले आये आचार्य दिवाकर जी ने उनके पैर धोये तब पिता जी को ज्ञात कराया कि यह हैं पंडित भीमसेन जी शर्मा वेदों के प्रकांड पं० और यह गुरुदेव तुम्हारे इटावा के ही हैं। उसके पश्चात् पिता जी

आश्रम में आ गये। रात्रि में पुनः भीमसेन जी ने बुलवाया और पारिवारिक समाचार पूछे फिर वे पैर दाबने लगे एक पैर श्री दिवाकर जी और एक पैर पिता जी। दाबते हुए जब दिवाकर जी अपने पैर के नीचे के हिस्से में आये तो पं० जी एक तीव्र पीड़ा से कराह उठे। श्री दिवाकर जी ने पूछा गुरु-देव यह क्या हो गया है ? तब पं० जी का गला रुंध गया और साश्रु हो कर बोले दिवाकर यह कुष्ठ है। मैंने अपने गुरु श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज के प्रति बड़ा विश्वास-घात किया है। उस पाप के फलस्वरूप मेरे समस्त शरीर में कुष्ठ होकर कृमि होने चाहिये। आर्थिक लोभ के कारण लेखों द्वारा जो मैंने गुरु को वचन दिया था, उसका पालन नहीं कर सका। मैं उस अन्तर्व्यथा में अब जल रहा हूं किसी प्रकार मुझे शान्ति हो ही नहीं पा रही है और दिवाकर अब मेरा मरण निकट है, मैं तुम्हारे पास इसलिये आया हूं कि मरण से पूर्व मैं गुरु ऋण से उऋण होने के लिए एक यज्ञ वैदिक विधि से चाहता हूं। मेरे सनातनी हो जाने के पश्चात् मेरे समस्त शिष्य पौराणिक हो गये हैं। एक मात्र तुम्हीं वैदिक धर्मी हो और मेरे गुरुदेव में आस्था रखने वाले शेष हो। मेरी स्वामी जी पर उसी प्रकार आस्था है, श्रद्धा है, जिस प्रकार उनके जीवन में थी और मैं आज तुम से कहता हूं उनका उद्देश्य, उनका चिन्तन, उनका उपदेश, अद्वितीय था में अर्थ की मार से दब गया और आर्य समाजियों में श्रद्धा भावना की न्यूनता के कारण मैं अपने मन पर पत्थर रख

कर गुरु के सिद्धान्तों की आलोचना करता रहा। सम्भव है अब तुम्हें मैं पुनः दर्शन न दे सकूं। मैंने उस यज्ञ का आचार्य तुम्हें बनाया है तुम पूर्ण वैदिक विधानानुसार उसका सम्पादन करो। इसके पश्चात् दिवाकर जी ने पूछा कि महाराज ! स्त्रियों को वेदाधिकार है या नहीं ? पण्डित भीमसेन जी ने उत्तर दिया महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में, भाष्य भूमिका में तथा अपने भाष्य में प्रतिपादित किया है वह अक्षरशः सत्य है। यजुर्वेद के तीसरे अध्याय मंत्र ४८ में 'त्र्यम्बकं यजामहे' यह मंत्र अम्बक, इष्टि का है इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध 'सुगन्धिम् पति वेदनम्, मृत्यो र्मुक्षीय मामृतः' यह स्त्री के पढ़ने का है जो त्र्यम्बक इष्टि में पत्नी अपने सौभाग्य के लिये आहुति देती है। यह मन्त्र स्वतः सिद्ध करता है कि स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार है। इस प्रकार प्रत्येक बात में स्वामी दयानन्द जी के प्रति श्रद्धावान् थे और कहते थे गुरुदेव दयानन्द साधारण पुरुष नहीं थे। इस प्रसंग के पश्चात् पं० जी प्रातः मैनपुरी आश्रम से पिता जी को आशीष देकर प्रस्थान कर गये। इसके पश्चात् उन्होंने एक वृहत् यज्ञ का आयोजन किया और उसका आचार्य पद श्री दिवाकर जी को ग्रहण कराया। वैदिक रीत्यनुसार कुरावली में यज्ञ सम्पन्न हुआ औरवे जीवन के अन्तिम छै मास में पूर्णतया वैदिक धर्मानुयायी हो गये थे। इस संस्मरण में कोई भी शंका की बात हो उसका निवारण मेरे पिता श्री पुरुषोत्तम देव जी वैद्य कंथावा, इटावा से हो सकता है। आचार्य दिवंगत हो चुके हैं। उनके जीवन काल में भी यह घटना यह घटना प्रकाशित हो चुकी थी।

मूर्त्ति-पूजा ने क्या किया ?

[श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय]

मूर्ति-पूजा ने भारत के अकल्याण की जो सामग्री एकत्रित की है, उसे लेखनी लिखने में असमर्थ है। मूर्ति-पूजा ने भारतवासियों का जो अनिष्ट किया है, उसे प्रकट करने में हमारी अपूर्ण विकसित भाव प्रकाशक-शक्ति अशक्त है। जो धर्म सम्पूर्ण भाव से आन्तरिक वा आध्यात्मिक था उसे सम्पूर्ण रूप से बाह्य किसने बनाया ?–मूर्त्ति-पूजा ने कामादि शत्रुओं के दमन और वैराग्य के साधन के बदले तिलक और त्रिपुण्ड किसने धारण कराया ?–मूर्त्ति-पूजा ने ईश्वर भक्ति, ईश्वर प्रीति, परोपकार और स्वार्थ त्याग के बदले अंग में गोपीचन्दन का लेप, मुख से गङ्गा लहरी का उच्चारण कण्ठ में अनेक प्रकार की मालाओं का धारण किसने सिखाया ?—मूर्त्ति-पूजा ने। संयम, शुद्धता, चित्त की एकाग्रता आदि के स्थान में त्रिसीमा [धारणा, ध्यान, समाधि] में प्रवेश न कर केवल दिन विशेष पर खाद्य विशेष का सेवन न करना, प्रातः काल, मध्याह्न और सायंकाल में अलग-अलग वस्त्रों के पहनने का आयोजन और तिथि विशेष पर मनुष्य विशेष का मुख देखना तो दूर रहा उसकी छाया तक का स्पर्श न करना, यह सब किसने सिखाया? मूर्त्ति-

पूजा ने हिन्दुओं के चित्त से स्वाधीन-चिन्तन की शक्तिकिसने हर की ?—मूर्त्ति-पूजा ने। हिन्दुओं के प्रकोमल शौर्य्य, उदारता, और सत्साहस को किसने दूर किया ? मूर्त्ति-पूजा ने। प्रेम, संमवेदना और परदुःख कातरता के बदले घोरतर स्वार्थपरता की हिन्दुओं के चरित्र में किसने बढ़ाया—मूर्त्ति-पूजा ने। हिन्दुओं को अमानुष अपितु पशुओं से भी अधम किसने बनाया मूर्त्ति-पूजा ने। आर्य्यावर्त्त के सैंकड़ों टुकड़े किसने किये ? मूर्त्ति-पूजा ने। आर्य जाति को सैकड़ों सम्प्रदायों में किसने बांटा ? मूर्तिपूजा ने। इस देश को सैकड़ों वर्षों पराधीनता की लोहमयी श्रृंखला में किसने जकड़ रक्खा ? मूर्ति-पूजा ने। कौन सा अनर्थ है जो मूर्ति-पूजा द्वारा सम्पादित नहीं हुआ। कोई चाहे कुल, धन, ख्याति में कितना ही बड़ा क्यों न हो यदि वह किसी अंश में भी मूर्ति-पूजा का समर्थन करता है, तो हमें यह कहने में अणुमात्र भी सङ्कोच नहीं होगा कि वह व्यक्ति किसी अंश में भी भारतवर्ष का मित्र नहीं हो सकता, क्योंकि मूर्ति-पूजा भारतवर्ष के सारे अनिष्टों का मूल है।

दयानन्द ने इस प्रबल शत्रु के विरुद्ध प्रचण्ड युद्ध का आयोजन करके न केवल भारत की आचार्य मण्डली में अपने लिये अद्वितीय आसन बना लिया है, अपितु हिन्दुओं के प्रकृत कल्याण के स्वाभाविक द्वार को भी खोल दिया है। इस देश के प्रायः सभी आचार्यों ने, सम्भवतः सभी सम्प्रदायों के प्रवर्त्तकों ने मूर्ति-पूजा के साथ सन्धि कर ली या उसके साथ

किसी न किसी प्रकार का समझौता करके चलने की चेष्टा की है। इसके विपरीत स्वामी दयानन्द से बहुत स्थानों में और बहुत बार मूर्ति पूजा का खण्डन छोड़ने का अनुरोध किया गया और उन्हें प्रलोभन तक दिये गये, लेकिन वे सब प्रलोभनों से ऊपर रहे और जीवन पर्यन्त वाणी और लेखनी से निराकार ईश्वर का समर्थन और मूर्त्ति पूजा का प्रबल खण्डन किया।

मूर्ति-पूजा के विरुद्ध प्रचण्ड संग्राम में दयानन्द अतुल्य अनुपम और अद्वितीय थे। जैसे मूर्त्ति पूजा आर्य संस्कृति की प्रधानतम वैरिणी है वैसे ही वे मूर्त्ति पूजा के प्रधानतम प्रबलतम वैरी थे। उन्होंने समस्त भारत भूमि में अति उज्ज्वल और प्रबल भाव से इस बात का प्रचार किया कि जब तक मूर्त्ति-पूजा समूल नष्ट न होगी तब तक भारत भूमि का कोई भी कल्याण साधित न होगा।

(महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र की भूमिका)

दयामयानन्द रस प्रसारी,

सरस्वती स्वान्त विकासकारी।

अभूदव न्यां कलुषायहारी॥

परोपकारी जगतो हिताय।

महर्षि दयानन्द द्वारा ४९ शास्त्रार्थों की धूम

समय	संख्या	स्थान	विद्वान्
सव् १८६७	१	अनूपशहर	श्री पं० अम्बादत्त
	२	रामघाट	,, पं० कृष्णानन्द
	३	कर्णवास	,, पं० हीरावल्लभ
	४	सोरों	,, पं० अङ्गद स्वामी
	५	ककोड़े का मेला	,, पं० अम्बादत्त
सन् १८६८	६	फर्रुखाबाद	,, पं० श्री गोपाल
सन् १८६९	७	फर्रुखाबाद	,, पं० हलधर ओझा
(१८ जून)	८	कासगंज	,, पं० हरिशङ्कर
(३१ जुलाई)	९	कानपुर	,, पं० हलधर ओझा
सन् १८६९	१०	काशी	,, पं० ताराचरण
(१६ नवंबर)		(वाराणसी)	,, स्वामी विशुद्धानन्द
			,, पं० बाल शास्त्री
			,, पं० शिवस्वामी
			,, पं० माधवाचार्य
			,, पं० वामनाचार्य
			(आदि)

	११	मिर्जापुर	,, पं० गोविन्द भट्ट
			,, पं० जयश्री
सन् १८७०	१२	वाराणसी (२)	,, पं० किसी ने आह्वान स्वीकार नहीं किया
	१३	अनूपशहर	,, पं० कृष्णानन्द (शास्त्रार्थ करने नहीं आये)
	१४	डुमराव	,, पं० दुर्गादत्त
	१५	आरा	,, पं० रुद्रदत्त
सन् १८७२	१६	पटना	,, पं० रामजीवन भट्ट
सितम्बर			,, पं० रामअवतार
	१७	कलकत्ता	,, पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती
२३ मार्च			
सन् १८७३	१८	कलकत्ता	,, पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न
८ अप्रैल	१९	कलकत्ता	,, पं० तारानाथ
२५ मई	२०	छपरा	,, पं० जगन्नाथ
	२१	आरा	,, पं० रुद्रदत्त
अक्टूबर	२२	कानपुर	,, पं० गंगाधर
१९७४ (फरवरी)	२३	वृन्दावन	,, पं० रंगाचार्य
फरवरी	२४	इलाहाबाद	,, पं० काशीनाथ शास्त्री
	२५	जबलपुर	,, पं० शंकर शास्त्री
	२६	नासिक	अनेक पण्डितगण
नवम्बर	२७	बम्बई	,, पं० वेचन शास्त्री

	२८	सूरत	,, पं० लक्ष्मण शास्त्री
	२९	भरौच	,, पं० माधवराय
	३०	राजकोट	,, पं० महीधर
सन् १८७५	३१	बम्बई	,, पं० खेमजी बालजी जोशी
	३२	बम्बई	,, पं०कमलानारायण आचार्य
	३३	बड़ौदा	,, पं० ज्ञानेश्वर
			,, पं० अप्पाशम्भू
सन् १८७६	३४	बम्बई	,, पं० रामलाल
२७ मई	३५	वाराणसी (३)	आह्वान किया
१८ अगस्त	३६	अयोध्या	,,
	३७	बरेली	,, पं० अङ्गद शास्त्री
सन् १८७७	३८	चाँदपुर [मेला]	,, पादरी स्काट
२० मार्च			,, मौलवी मुहम्मद कासिम
२४ सितम्बर	३९	जालन्धर	,, मौलवी अहमद हसन
४ अगस्त			
	४०	गुजरात	,, कश्मीरी पण्डितों से
सन् १८७९	४१	बदायूँ	,, पं० रामप्रसाद
२५ अगस्त	४२	बरेली	,, पादरी स्काट
१ दिसम्बर	४३	वाराणसी (४)	,, पुनः आह्वान किया
२९ जून			
सन् १८८१	४४	बेवर	,, पादरी शुलब्रेड
सन् १८८२	४५	उदयपुर	,, मौलवी अब्दुल रहमान

सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित—

मूर्ति-पूजा से होने वाली १६ हानियाँ

[१] मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट हो जाता है। मूर्ति-पूजा सीढ़ी नहीं किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिरकर चकनाचूर हो जाता है पुनः उस खाई से नहीं निकल सकता, उसी में मर जाता है।

[२] उसमें करोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है।

[३] स्त्री पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार लड़ाई बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं।

[४] उसी को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन मान के पुरुषार्थ रहित होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गंमाते हैं।

[५] नाना प्रकार की विरुद्ध स्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्ध मत में चलकर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं।

[६] उसी के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं, उनका पराजय होकर राज्य स्वा-

तन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक बिधि दुःख पाते हैं।

[७] जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता व गाली प्रदान देता है वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्तियाँ धरते हैं उन दुष्ट बुद्धि वालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे।

[८] भ्रान्त होकर मन्दिर-मन्दिर देश-देशान्तर में घूमते-घूमते दुःख पाते धर्म संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते चोर आदि से पीड़ित होते ठगों से ठगाते रहते हैं।

[९] दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं वे उस धन को वेश्या, परस्त्री गमन, मद्य माँसाहार, लड़ाई बखेड़ों में व्यय करते हैं जिससे दाता के सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है।

[१०] माता-पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं।

[११] उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता व चोर ले जाता है तब हाय-हाय करके रोते रहते हैं।

[१२] पुजारी पर स्त्रियों के संग और पुजारिन पर पुरुषों के सग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं।

[१३] स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न

होने से परस्पर विरुद्ध भाव होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

[१४] जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़ बुद्धि हो जाता है क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है।

[१५] परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिये बनाये हैं उनको पुजारी जी तोड़ताड़ कर न जाने उन पुष्पों को कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़कर वायु, जल की शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल सड़कर उल्टा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिये पुष्पादि सुगन्धयुक्त पदार्थ रचे हैं।

[१६] पत्थर पर चढ़े हुये पुष्प चन्दन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड़ के उससे इतना दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का और सहस्रों जीव उसमें पड़ते उसी में मरते सड़ते हैं। ऐसे-ऐसे अनेक मूर्ति पूजा के करने में दोष आते हैं, इसलिये सर्वथा पाषाणादि मूर्ति पूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य हैं। और पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है करते हैं और करेंगे वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे।

ऐसे ऐसे अनेक मूर्ति-पूजा के करने में दोष आते

हैं। इस लिये सर्वथा पाषाणादि मूर्ति-पूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है। और जिन्होंने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं, करेंगे वे सब दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे।

[सत्यार्थ प्रकाश ११वां समुल्लास]

इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में मूर्ति-पूजा से हानियों की स्पष्ट गणना करते हुए मानव मात्र को उसकी बुराइयों से बचने की चेतावनी दी है। भारतवर्ष के पतन के मूल कारणों में मूर्ति-पूजा को भी एक मुख्य कारण मानते थे और वे चाहते थे कि देशवासी इस अभिशाप से मुक्त हों। उन्होंने अपने जीवन पर्य्यन्त प्रयत्न किया और उनके बाद आर्य समाज पर यह दायित्व है। आरम्भ में हमने दृढ़ता से कार्य किया पर आज हम उतने साहस से काम नहीं कर रहे जितना हमें करना चाहिये। आर्य समाज की नयी पीढ़ी पर यह दायित्व है कि वह भारतीय समाज में बढ़ रहे मूर्त्ति-पूजा पाखण्ड को निवारण करे और देश को मिथ्या अन्ध विश्वासों और पाखण्डों से मुक्त करे। आज आर्यसमाज के अधिकांश कर्णधार समझौता वादी मनोवृत्ति के बनते जा रहे हैं। काशी शास्त्रार्थ शताब्दी और पाखण्ड खण्डिनी पताका की स्मृति हमें झकझोर कर हमारे कर्त्तव्यों का स्मरण करा रही है। हमें क्या करना है यह स्पष्ट है आवश्यकता है साहस से आगे कदम बढ़ाने की। हमें चाहिये कि हम समझौता वादियों को स्मरण करा दें कि महर्षि ने हमें चेतावी दी थी—

मूर्त्ति-पूजा पर मृदु आक्रमण करने वा उससे किसी प्रकार की सन्धि करने से हमारे सिद्धान्तों की वही दुर्दशा होगी जो अन्य सम्प्रदायों में हुई। समयान्तर में आर्यसमाज पौराणिक होकर हिंदुओं में मिल जायगा।"

आज समय इस प्रश्न का उत्तर हमसे मांग रहा है कि हम समझौता करेंगे। या अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहेंगे। हमारा एक ही उत्तर होना चाहिये हम मूर्त्ति-पूजा और मूर्त्ति-पूजकों से समझौता नहीं करेंगे। इसी में धर्म और देश का भविष्य निहित है।

—सम्पादक

टंकारा की दिव्य ज्योति

ओ टंकारा की ज्वलित ज्योति।

तू कभी नहीं बुझने वाली॥

तुझसे जगमग यह जगतीतल।

तुझसे भारत गौरवशाली॥

—डा० हरिशङ्कर शर्मा

—एक संकलन—

महर्षि दयानन्द द्वारा मूर्त्ति-पूजा खण्डन को धूम

महर्षि दयानन्द कहा करते थे कि भारत में यज्ञ की प्रथा उठ जाने के पश्चात् मूर्त्ति-पूजा चल पड़ी और लोगों का इस प्रकार का विश्वास हो गया कि अग्नि, वायु, आदि का एक अधिष्ठाता देवता है। परन्तु यह कपोल कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

o o o

पण्डित हीरा बल्लभ पर्वतीय शास्त्री स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने अनूप शहर से कर्णवास आये। उस दिन सभा में लगभग दो सहस्र मनुष्यों की भीड़ थी। पण्डित जी सभा के मध्य में एक छोटे से सिंहासन पर बालमुकुन्द, गौतम चक्र, शालिग्राम आदि की मूर्तियां रख कर यह प्रतिज्ञा करके बैठे कि स्वामी जी महाराज के हाथ से इन मूर्त्तियों को भोग लगवा के उठूँगा।

स्वामी जी से उनका शास्त्रार्थ ६ दिन तक चलता रहा। नित्य नये श्रोता आते जाते रहे। अन्त में सब सभास्थ श्रोताओं के मध्य पण्डित जी ने खड़े होकर स्वामी जी की संस्कृत में स्तुति की ओर उन्हें प्रणाम कर बड़े उच्च स्वर में घोषणा की कि—

स्वामी जी महाराज जो कुछ कहते हैं वह सत्य और

प्रमाणित है। इस घोषणा के पश्चात् पण्डित जी ने सिंहासन पर रक्खी समस्त मूर्त्तियां गंगा में डाल दीं और वेद भगवान् को इसी सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। स्वामी जी ने यह देख कर पण्डित जी के सत्य-ग्रहण और मिथ्या त्याग की प्रशंसा की।

इस घटना और स्वामी जी के निरन्तर उपदेशों से वहाँ के प्रमुख ब्राह्मणों ने (जिनमें भगवान् बल्लभ वैद्य, दीपेश्वर, बलकेश्वर ब्रह्मा, पं० रविशंकर, पं० शालिग्राम गुजराती, आदि प्रमुख थे) अपनी मूर्त्तियाँ गंगा में फेंक दीं. फलस्वरूप नगर में बड़ी हलचल मच गयी। इन लोगों ने पण्डितों की कंठियां भी तोड़ दी थीं।

o o o

सोरों [एटा] के विद्वान् पण्डित अंगदराम जी का स्वामी जी के साथ संस्कृत में मूर्त्ति-पूजा पर विचार विमर्श हुआ। भागवत् आदि अनेक विषयों पर चर्चा होती रही। अन्त में पण्डित जी ने पूर्ण सन्तुष्ट होकर अपनी शालिग्राम की मूर्त्ति सबके सम्मुख गंगा में डाल दी और भागवतादि पुराणों की कथा कहना भी छोड़ दिया।

o o o

ब्रह्मचारी खेम करन जी [कर्णवास] ने बताया कि मैं २७ वर्ष तक मर्त्ति-पूजा करता रहा, परन्तु स्वामी जी के उपदेशों का मुझ पर विशेष प्रभाव हुआ और मैने मूर्त्ति-पूजा त्याग दी। मेरी मूर्त्तियों और उनकी पूजा सामग्री का बोझ लगभग २० सेर था और मैं उन्हें साथ-साथ लादे फिरा करता था।

एक बार सोरों के बाराह मन्दिर के स्वामी विद्वान्

कैलास पर्वत जी के समीप स्वामी दयानन्द पहुंचे और अपना परिचय देने के पश्चात् बोले कि मैं आप से कुछ सहायता लेने आया हूं। कैलास पर्वत जी ने पूछा कैसी सहायता चाहिये। स्वामी दयानन्द ने कहा कि रामानुज, बल्लभ, निम्बार्क और माधव सम्प्रदाय वालों ने धर्म का नाश कर रक्खा है, बहुत कुछ वेद विरुद्ध कार्य किये हैं. हम इनका खण्डन करना चाहते हैं। कैलास पर्वत जी ने कहा कि निसन्देह आप का यह विचार बहुत उत्तम है, हम आपकी सहायता करने को उद्यत हैं, किन्तु आप हमारी दो बातें मान लें। प्रथम, मूर्त्ति-पूजा खण्डन न करें. इससे बहुत से लाभ हैं। मन्दिर बने हुए हैं और अज्ञानी लोग वहाँ जाकर पूजा करते है। जिससे सैकड़ों सहस्रों लोगों की आजीविका का सम्बन्ध है। द्वितीय-पुराणों का भी खण्डन न करें अर्थात् यह भी न कहें कि पुराण व्यासकृत नहीं अथवा उनमें से कुछ भी व्यासकृत नहीं हैं।

स्वामी जी ने उत्तर दिया कि इन चार सम्प्रदायों का आदि मूल मूर्त्ति-पूजा है जिस के द्वारा ये संसार को लूट रहे हैं। अतएव इसका खण्डन अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही मूर्त्ति-पूजा का प्रमाण पुराणों में ही मिलता है. अतएव उनका खण्डन भी अनिवार्य है।

o o o

मथुरा में स्वामी जी के सहपाठी पं० उदय प्रकाश जी ने स्वामी जी से कहा कि आप मूर्त्ति-पूजा खण्डन करना छोड़ दीजिये। स्वामी जी ने उत्तर दिया मूर्त्ति-पूजा असत्य

है, तो आप भी इसका निषेध करें और यदि सत्य है तो मुझसे शास्त्रार्थ कर लें। मैं इस अन्धेर को जो वैरागियों, गोसाइयों आदि मत मतान्तरों के आचार्यों ने मचा रक्खा है नहीं देख सकता हूं।

कानपुर में स्वामी जी के प्रचार से जब भक्त लोग मूर्त्तियां गंगा में बहाने लगे, तब एक विज्ञापन निकाला गया—

जो कि दयानन्द सरस्वती मत के मुताबिक बहुत लोग ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, वगैरह अपना कुल धर्म छोड़ कर मूर्त्ति और देवताओं को गंगा जी में प्रवाह कर देते हैं, यह बात बेजा और नामुनासिब है। इस लिये इस इश्तिहार द्वारा सूचित किया जाता है कि जो लोग उनके मत को अख्तियार करें उनको चाहिये कि मूर्त्तियों को बराय मेहरबानी एक मन्दिर कैलास जी में जो महाराज गुरु प्रसाद शुक्ल जी का है उसमें या प्रयाग नारायाण तिवारी में पहुंचा दिया जाय और अगर इनको पहुंचाने की गुंजाइश न हो तो इत्तला करें। हम उनको उठा लिया करेंगे। और उनके बहाने व फेंकने में जो पाप है वह संस्कृत में लिखा है। दस्तखत—हल धर ओझा

हस्ताक्षर कर्त्ता वे ही हल धर ओझा है। जिन्हें स्वामी जी ने शास्त्रार्थ में हराया था। शास्त्रार्थ थेन साहब असिस्टैण्ड कलक्टर कानपुर की अध्यक्षता में हुआ था और उन्होंने स्वामी जी के पक्ष में निर्णय दिया था। स्वामी जी के प्रचार से कानपुर निवासियों में मूर्त्ति-पूजा के प्रति अश्रद्धा फैल गयी थी। ० ० ०

—संकलन कर्त्री-कुमारी संस्कृति

खुद तराशा है मगर नाम खुदा रखा है

[शास्त्रार्थमहारथी स्व० पं०रामचन्द्र देहलवी के भाषण का अंश]

लोग पूछते हैं मूर्त्ति-पूजा से क्या हानि है ? मैं पूछता हूं कि क्या मूर्त्ति कुछ अनुभव करती है ? मैं मूर्त्ति के विरुद्ध नहीं, किन्तु आप तो उस मूर्त्ति के प्रति चेतनवत् व्यवहार करते हैं। किसी के पिता जी की मृत्यु हो गयी और उनका शव वहां पर पड़ा है। वह अपने मृतपिता के मुख में दवाई डाले तो क्या उससे उन्हें कुछ लाभ होता है ?

राम की मूर्त्ति आप रक्खें, फिर राम नाम कहते रहें तो इससे क्या लाभ होगा ? यदि राम की मूर्त्ति को देख देखकर उनके चरित को याद करें और तदनुकूल व्यवहार करें तो कुछ लाभ भी हो सकता है। लेकिन किसी के चरित्र को जाने बिना उसके चित्र से कोई लाभ नहीं। हम मूर्त्ति के सामने बैठ जाते हैं किन्तु अपने चरित्र को नहीं बनाते।

गुजरे हुए महापुरुषों के चित्रों को हम उनके चरित्र के आधार पर बनाते हैं तो फिर उनके चित्र बनाने की आवश्यकता ही नहीं, जबकि चरित्रों के आधार पर ही हम उनके चित्र की भी कल्पना कर सकते हैं, फिर चित्र बनाने की आवश्यकता ही क्या रही ? हमने एक पत्थर को खुद ही काट छांट कर रख दिया और उसका नाम भगवान् रख लिया। यह बात उचित कैसे हो सकती है ? हमें करना तो कुछ और था और हम करनें लगे कुछ और—

बुत्परस्तों का है दस्तूर निराला देखो।
खुद तराशा है मगर नाम खुदा रखा है।